रेती
के
रात-दिन
सम्पादक
प्रभाकर माचवे

Jyoti Krishna

शिक्षक दिवस 1983 के अवसर पर

रेती के रात-दिन

रेती के रात-दिन
संपादक
प्रभाकर माचवे

आमुख

हर साल शिक्षक दिवस आता है और राजस्थान के शिक्षक साहित्यकारों की रचनाओं का नया आयाम जुड़ता है। मेरे ख्याल से रचनाधर्मिता की कोई मंजिल नहीं होती, मात्र गति होती है और गतियों का अंतहीन सफर होता है। मुझे खुशी है कि हमारे शिक्षक भाई-वहन सृजन की पीड़ा उठाकर इस सफर पर चल रहे हैं।

जिस वर्ष से राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग ने शिक्षक साहित्यकारों के लिए "शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना" शुरू की थी कदाचित् यही मंशा थी कि शिक्षक समुदाय एक अध्ययन प्रिय तथा सृजनरत समुदाय है, जो निःस्पृह भाव से स्वांतः सुखाय रचनारत तो रहता ही है, अविज्ञिप्त भी रहना चाहता है। उनकी श्रेष्ठ रचनाएं कागजों के सफों तक ही क्यों रह जाय, "विभाग" उन्हें राजस्थान के प्रकाशकों के माध्यम से प्रकाशित कराये तथा देश-प्रदेश के साहित्यकारों समीक्षकों के हाथों तक उसे पहुंचाये।

प्रोत्साहन की दृष्टि से कभी शुरू की गई उक्त "योजना" अब उपलब्धि बन गई है। मुझे ये पंक्तियां लिखते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है कि शिक्षक-दिवस योजना क्रम में प्रकाशित पुस्तकों की संख्या अब तक 81 हो गई हैं। एक से बढ़ कर एक सुन्दर नयनाभिराम ये पुस्तकें देख कर देश के साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक पत्रों ने अपनी समीक्षाओं में जो उद्गार व्यक्त किये हैं वे हमारे लिए तो प्रीतिकर हैं ही, पूरे देश के शिक्षक समुदाय के लिए अनुकरणीय दृष्टांत भी हैं।

इस वर्ष की पांच कृतियों के लिए हमने जिन अतिथि संपादकों से निवेदन किया था उन्होंने अत्यन्त परिश्रम से शिक्षकों की रचनाओं का साहित्यिकता के प्रतिमानों पर कस कर, चयन किया, भूमिका लिखी तथा पुस्तक का सार्थक नामकरण किया, इसके लिए मैं प्रत्येक का व्यक्तिशः आभार मानता हूं। जिन रचनाकार-शिक्षकों की रचनाएं निम्न पांचों कृतियों में नहीं आ पाई उनके भी

हम आभारी हैं। रचना सम्मिलित न हो पाने का कारण मात्र स्थानाभाव ही है।

इस वर्ष के पांच संकलन ये हैं :—

1. भीतर-बाहर (कहानी संकलन) सं. मृदुला गर्ग
2. घायल मुट्ठी का दर्द (कविता संग्रह) सं. डॉ. प्रकाश आतुर
3. रेती के रात-दिन (विविधा संकलन) सं. डॉ. प्रभाकर माचवे
4. हिवड़ै रो उजास (राजस्थानी संकलन) सं. श्रीलाल नथमल जोशी
5. पांखुरियां माटी की (बाल-साहित्य संकलन) सं. कन्हैयालाल नन्दन

इस अवसर पर मैं सभी प्रकाशकों का भी आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने इन प्रकाशनों को समय पर प्रकाशित करने के लिए श्रम किया ।

—हर प्रसाद अग्रवाल
निदेशक
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा
राजस्थान, बीकानेर

भूमिका

वरिष्ठ सम्पादक 'शिविरा पत्रिका' ने मेरे पास 164 रचानएँ गद्य-विविधा संकलन के लिए भेज दीं। प्रत्येक रचना की एक पृष्ठ से इकतीस पृष्ठ तक की लंबाई थी। यानी औसत दस पृष्ठ मान लें तो एक हजार पृष्ठ मुझे पढ़ने पड़े। वे रचनाएँ कैसी थीं, इन पर मैं विस्तार से आगे लिख रहा हूँ। पर लगा कि भारत वर्ष की मानसिक विविधता तो इनके द्वारा दर्शित हुई ही पर अराजकता भी। यदि हमारे शिक्षक इतने अव्यवस्थित और अनाधुनिक (अवैज्ञानिक) हैं तो बेचारी अगली पीढ़ी—जो वे निर्माण करने जा रहे हैं—उसका क्या होगा?

तिफ़्ल में बू आयेगी क्या माँ-बाप के ऐतबार की
दूध है डिब्बे का और तालीम है सरकार की! —अकबर

चूंकि केवल रचनात्मक आलोचना ही नहीं, आप इस भूमिका द्वारा मुझसे कुछ दिशा-निर्देशन भी चाहते हैं—क्योंकि मैं वय में वृद्ध हूँ, चाहे 'ज्ञान' वृद्ध न होऊँ, पर अनुभव-समृद्ध तो इन रचनाकारों की अपेक्षा अधिक हूँ ही—तो कुछ विचार प्रस्तुत हैं। आपको बुरे लगें, तो ध्यान मत दीजिए।

रचना किसे कहते हैं? मान लीजिए आपने एक खबर पढ़ी, जैसे मैंने यह आज समाचार पत्र में पढ़ा: बंबई, बुधवार 6 जुलाई: कुर्ला में मिठी नदी के परिसर में अनधिकृत मकान गिराये गये। महानगर-पालिका के इस अभियान में सौ पक्के 'शेड्स' गिराये गये। एक शेड के नकली छत में 54 बोरे भरी एक लाख से अधिक घड़ियाँ मिलीं। इन घड़ियों की कीमत पाँच करोड़ रुपये हैं। इस मकान गिराने के अभियान में महापालिका आयुक्त सुखदनकर, 5 विभागाधिकारी, 600 कर्मचारी, एक पुलिस उपायुक्त, 140 पुलिस और रिजर्व पुलिस ने भाग लिया। दोपहर तक 30 ट्रक भरके सामान हटाया गया।

अब कई तरह की प्रतिक्रियाएँ इस समाचार को लेकर आपके मन में उठ सकती हैं। कोई कहेगा—'देखिये कहने को रहते हैं झुग्गियों में और गंदी बस्तियों में पर ये सब स्मगलरों से साँठ-गाँठ रखने वाले बदमाश हैं!'

—'पुलिस ने बताई उतनी ही होगी, और माल होगा जो यह छापा मारने वाले बीच में ही उड़ा ले गये होंगे।'

—'इतनी घड़ियां जमा हो कैसे गईं? क्या समुन्दर से लाते हैं? विदेशी जहाजों में, या छोटी नावों में।'

—'किस देश से लाते होंगे?'

—'स्विट्ज़रलैण्ड में बैंक एकाउन्ट रखा। पैसे तो ला नहीं सकते, घड़ियाँ

ही ले आये।

—'घड़ी घड़ी यह घड़ी की बात क्यों करते हो ? कुछ 'ऊँची अध्यात्म' की 'काल-चिन्तन' की, क्षण और संवत्सर की बात करो। हिन्दी साहित्य के गये पचास वर्ष में कितने काल-खण्ड हुए, या 'युग' हुए बताओ ? प्रेमचंद युग के बाद ?'

—'अब की बार ज़रा वो आपके दोस्त विदेश जायें तो उन्हें कहना एक लेडीज़ रिस्टवाच मुन्नी के लिये भी ले आयें।'

—'टिक टिक टिक टिक/क्षण क्षण बीत रहा है जैसे/कण-कण बालू 'सैंड-वाच' में/कहती सब कुछ अस्थिर, आंशिक, क्षणिक···/नहीं टिक सके बड़े-बड़े साम्राज्य, सूरमा/तुम नन्हीं बेजान यंत्र-'णा'/बके जा रही—टिक, टिक'।

—'के टैम हुओ है जी ?'

ऐसी पचासों प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं ? क्या ये सब साहित्य है ? क्या ये सब रचनाएँ हैं ? गद्य-शैली के ये सब 'कच्चे मसाले' हैं। सवाल यह है कि इन मसालों से आप 'रसोई' कैसी बनाते हैं ? इन रंगों से चित्र आपने कौन-सा लिखा है। तो सबसे पहले अपने मन में ही चुनाव का प्रश्न है। कुछ चीज़ें छाँट देनी हैं। कुछ रखनी हैं। कुछ ढह जायेंगी, कुछ टिकेंगी। कुछ रह जायेंगी, कुछ बिकेंगी। कौन-सी वे हैं जो 'सकेंगी' ?

रचना-दोष—सबसे पहले आरम्भ करें प्रथम-दर्शन से। किसी अजनबी व्यक्ति से आप पहली बार मिलते हैं तो आपका उसके प्रति अनुकूल या प्रतिकूल भाव कैसे पैदा होता है ? पहले तो आप उसका चेहरा-मोहरा, कपड़ा-लत्ता, (एक नूर आदमी, दस नूर कपड़ा) देखेंगे।

सो हर रचना का एक बाह्य रूप होता है। अध्यापक विद्यार्थियों को बार-बार कहते रहते हैं : अच्छे सु-वाच्य अक्षर लिखो, सुलेख के 'इतने' अंक हैं,—वर्त्तनी ठीक हो, व्याकरण शुद्ध हो। आदि आदि।

मुझे खेद-पूर्वक कहना पड़ता है कि तीस प्रतिशत रचनाएँ इनमें से केवल इसी दोष के कारण अस्वीकृत करनी पड़ीं—कारण वे 'अपठनीय' थीं। उनमें लापरवाही से लिखी भाषा थी। अशुद्धियाँ थीं। लिखावट इतनी घनी और बुरी थी कि किसी के पल्ले ही न पड़े; या फिर छोटे बच्चे की तरह खुली-खुली बेतरतीब भी।

अब पढ़ना आरम्भ किया। कहानी, रेखाचित्र, ललित निबंध, रिपोर्ताज, गद्यकाव्य, डायरी के अंश—जो भी रचनात्मक गद्य विधा हो उसके पहले दो-तीन पैरा पढ़ते ही, या आधा पेज पढ़ते ही आपका मन उसकी ओर खिंचना चाहिए या नहीं ? अन्यथा कोई क्यों सारी रचना पढ़ेगा (सिवा परीक्षक के)। यदि रचना पढ़ते-पढ़ते ऊब आने लगे, या ऐसा लगे कि कोई दंड मिल रहा है, तो वह किस काम की।

कई लेखक पाठक से अपने आपको श्रेष्ठ ('सुपीरियर') समझते हैं। आपसी अध्यापकों में यह उपदेश देने की, अपने आपको औरों से अधिक पवित्र मानने

की ('होलियर दैन दाऊ') प्रवृति बहुत होती है। ऐसी सब रचनाएँ पाठक के मन में कभी भी तादात्म्य या रस-निष्पादन नहीं कर सकतीं, जो पाठक से एक अंतर पर—यानी या तो उससे बहुत ऊँचे या उससे बहुत नीचे—अहं' या हीन' ग्रन्थि से ग्रस्त हों।

अत: आधी रचनाएँ जो नसीहत भरी थीं – छोड़ देनी पड़ीं। नसीहत देना हमारा राष्ट्रीय 'नशा' हो गया है। और उसे न सुनना एक राष्ट्रीय आदत। नेता, साहित्यिक, शिक्षक सब 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' ('परोपदेश पांडित्यम') या तुकाराम ने कहा -'लोकां सांगे ब्रह्मज्ञान, स्वत: कोरडे पाषाण' यानी लोगों को ब्रह्मज्ञान सुनाता है, और स्वयम् सूखा पापाण है। शिक्षक को लिखते समय यह 'आत्म-चेतनता' नहीं रखनी चाहिए; उसे भूल जाना चाहिए कि वह शिक्षक है। अब विधावार जो रचनाएँ चुनीं उनकी बात करूं, कि वे क्यों चुनीं ?

रचना-गुण—ललित गद्य में से चुनते हुए मुझे जो इस संग्रह में बड़ी अच्छी रचनाएँ लगीं वे थीं :

बूढ़ा पीपल—निशान्त; दक्षिण भारत की नसें—रामनिरंजन 'ठिमाऊ'; लकड़ी का हाथ—बसंती लाल सुराना; पैसे से भी नहीं हटता—गोपाल प्रसाद मुद्गल; हम बने संचालक—भगवती प्रसाद गौतम; मिलती रहा करो—वीणा गुप्ता; रोमांस—पुष्पलता कश्यप; जाति बह गई—दुर्गा भण्डारी; किस्सा पर्व मनाने का—मुख्तार टोंकी; संस्कृति की तलाश—श्रीकृष्ण विश्नोई; उखड़े हुए—प्रेम खकरधज; शून्य की कहानी—जसवन्त सिंह मोहनोत।

अन्य रचनाओं पर स्पष्ट रूप से महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों, या हरीशंकर परसाई और शरद जोशी आदि के अखबारी व्यंग-लेखों का प्रभाव या छाया दिखाई दी। मैंने ऊपर की रचनाएँ इसलिए चुनी हैं कि उनमें मौलिकता थी, जीवन के प्रति सहृदयतापूर्ण आत्मीय संस्पर्श था, कोमल संवेदनशीलता थी।

गंभीर लेखों में, खोजपरक लेखों में साहित्य, कला, लोक संस्कृति पर विशेष थे—परन्तु इस बार जैसे ललित गद्य में कहानियाँ नहीं के बराबर थीं, शिक्षा को छोड़कर मानविकी के अन्य पहलुओं पर जैसे समाज-विज्ञान, नृ-विज्ञान, नागरिक शास्त्र-राजनीति, धर्म-अध्यात्म दर्शन-तर्क आदि विषयों पर एक भी निबंध नहीं था। जहाँ तक शिक्षकों का शिक्षा के बारे में लिखने का सवाल है—चर्वित-चर्वण यानी वही पुरानी घिसी-पिटी बातें दुहराना, उनकी 'जुगाली करना', 'बासी कढ़ी में उबाल', नवीन चिन्तन का सर्वथा अभाव मुझे दिखाई दिया। आश्चर्य नहीं कि मेकाले के समय से चली आ रही, 'घानी के बैल' जैसी शिक्षकों को एक ही 'रट' में डालने वाली यह एकदम परम्परा पीड़ित, गतानुगतिकत्त्व-अनुगामिनी शिक्षा-पद्धति कितनी दकियानूसी हो चुकी है। वहां घुटन ही घुटन है। साफ़ ताज़ी हवा का झोंका मानों मना है।

इसीलिए मैंने संग्रह का शीर्षक चुना—'रेती के रात-दिन'।

एक तो मरु-भूमि, जहाँ रेती ही रेती है। और उस रेती को भरकर काल-भय की पुरानी 'बालू-घड़ी' (सैंड-वाच) इस सारे कण-कण, छन-छन झरने वाले क्षण-क्षण के ब्यौरे का प्रतिकार्थ है। इसी के चित्र-कवर आदि पर बनाये

हैं। चौबीस घण्टे हुए कि फिर उसी घड़ी को उलटाकर रख दिया। फिर परिणाम वही — 'वही-वहीपन' !

खोज और विचार—खोज वाले लेखों में मुझे विशेष रूप से निम्नलिखित अच्छे लगे :

(1) मेवाड़ की साहित्य संस्कृति— कमला अग्रवाल
(2) लोक गीतों में बेटी—चन्द्रदान चारण
(3) तबला—कृष्णा वायती

शोधपूर्वक लिखे निबन्धों के लिए केवल जिज्ञासा पर्याप्त नहीं होती। तत्सम्बन्धी अन्य सह-संदर्भ साहित्य का अध्ययन और ज्ञान भी ज़रूरी होता है। शिक्षक रात-दिन विद्यार्थियों की जिज्ञासाओं का समाधान करते-करते स्वयं जिज्ञासाशून्य हो जाता है। ऐसा व्यक्ति जिसे और कुछ जानने की चाह नहीं, वह क्या औरों को ज्ञान देगा ?

प्रादेशिकता, आंचलिकता, निज-इतिहास और मूल-स्रोतों के प्रति आसक्ति बहुत अच्छी चीज़ है। परन्तु वह संकीर्णता या दुराग्रह के रूप में नहीं होनी चाहिए। आजकल विश्व साहित्य में 'एथ्निक' शब्द बड़ा अर्थ पूर्ण हो गया है : सृजनधर्मी और समीक्षात्मक दोनों प्रकार के लेखन में। डब्लू. बी. येट्स से लगाकर आज तक पश्चिमी देशों में इसकी धूम है। अब तो भारत में 'एथ्निक' सिनेमा की भी चर्चा हो रही है। ऐसे समय लोक गीतों पर कार्य करने वाले, उन्हीं पुराने उद्धरण देकर रसग्रहण करने वाले रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी, सूर्य करण पारीक वाले 'मॉडेल' से ही काम न लें। अब लोक-संस्कृति का अर्थ केवल संकलन नहीं, उस पर भाष्य और टीका-टिप्पणी भी है। समाज विज्ञान और मनोविज्ञान अब बहुत निकट आते जा रहे हैं। संस्कृति के किसी भी जनपद या अंचल को समझकर इन दो दूरबीनों, खुर्दबीनों के बिना संभव नहीं। अतः (स्व.) पद्मसिंह शर्मा वाली 'आह' और 'वाह' शैली में लोक-गीत, लोक-नाट्य, लोक-कथा, लोक-चित्रकला, लोक-शिल्प पूरी तरह से समझा नहीं जा सकता। उसके सौन्दर्य से अधिक उसकी सार्थकता को जानना ज़रूरी है।

अतीत से भविष्य तक—गद्य-शैली और भाषा का भी यही प्रवास है। अब आप प्राचीन शैली में नवीन बात केवल हास्य या व्यंग में ही प्रयुक्त कर सकते हैं। मान लीजिये आपके स्कूल में या सड़क पर कोई तीन-सौ वर्ष पुराने ढंग की पोशाक पहनकर आ जाये या चलने लगे तो आप उसे एक अजूबा कहेंगे। इसीलिए अब कोई 'रासो' नहीं लिखता, न मीराबाई की तरह पद। जैसे पद्य में, वैसे ही गद्य में शब्दों का चयन, वाक्य-विन्यास, बोल-चाल का लहजा, मुहावरे और वाक्-प्रचार सब बदल गये हैं, बदलते जा रहे हैं। उनके साथ-साथ कदम-ब-कदम यदि लेखक नहीं चलेगा तो उसे लोग एकदम 'पिछड़ा हुआ' या पुराने युग का खंडहर कहेंगे। कई लेखकों को दुर्भाग्य से इस बात का भान नहीं है कि लोग उन्हें क्या कहेंगे।

अतीत से प्रेरणा लेना अच्छा है। पर साथ ही कालिदास की बात याद

रखें—'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'। जैसे पुरानी चीजों में कई जंग खाई हुई, वेकार अर्थशून्य हो गई हैं, वैसे ही सभी नई कहलाने वाली 'लेटेस्ट' फैड और फैशन अच्छी ही होंगी यह जरूरी नहीं। इसका संतुलन न रखने से कई रचनाओं में संस्कृति की जो झलक मिलती है वह किसी न साफ किये हुए तालाब में सड़ते सिवार टंके, पत्रों से अंटे मैले पानी की तरह होती है। मानों काल वहां आकर कीलित हो गया, ठिठक गया। ऐसी म्रियमाण अतीत-पूजा, या गत की गौरव-गाथा गाते रहने का उपक्रम केवल हमारे मानसिक अविकसनशीलता का द्योतन करता है। उससे उलटे हर पुरानी चीज को छोड़ कर, काट कर, उसकी उपेक्षा और अवमानना कर हर नई-से-नई के पीछे भागना भी मानसिक अस्वस्थता का ही लक्षण है। संस्कृति एक नित्य परिवर्तनशील, निरन्तर ऊर्ध्व-गामिनी वस्तु है। हमने भारतीय संस्कृति संसद (10 जवाहरलाल नेहरू रोड, कलकत्ता-13) से दो खंडों में 'भारतीय संस्कृति' ग्रंथ हाल में संपादित किया है जिसमें देश के डेढ़-सौ विद्वान्, दार्शनिक, इतिहासकार, भाषावैज्ञानिक, पुरा-तत्त्वज्ञ, कला मर्मज्ञ, साहित्यकार आदि यही सन्देश देते हैं कि—'कल्चर इज़ ए कंटिन्युइटी' (संस्कृति परिक्रमणशीला है)। इस ग्रंथ में अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में, सब प्रदेशों, सब भाषाओं, सब धर्मों, सब मत-विश्वासों के मनीषी अपने-अपने विषय की विशेषज्ञता लिये प्रस्तुत है। ग्रंथ इस प्रकाशक संस्था की रजतजयंती के उपलक्ष्य में बनाया गया।

उसकी याद आने का कारण यह हुआ कि राजस्थान के शिक्षक राजस्थान के इतिहास, राजस्थानी संस्कृति आदि पर लिखेंगे, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर एक भी लेख में तुलनात्मक अध्ययन नहीं था। राजस्थान को भारत के विराट् परिपार्श्व में देखना होगा—तभी भविष्य की ओर अग्रसरण संभव है। केवल 'मरु भूमि' की बात बार-बार दुहराने से मिट्टी के कण-कण, सिकता की बात समझ में आयेगी। पर यह 'दिक्' प्रमाण नाकाफी है—जब तक उसे 'काल' और युग के अहर्निश गतिशील परिमाण में न देखा जाये। गुण 'दिक्' और 'काल के परस्पर-संघात से बनता है, न कि केवल एक दिशा, या एक ही काल-खंड से चिपके रहने से—शिक्षकों को यह बताना आवश्यक नहीं है। इसी से शीर्षक दिया—'रेती के रात-दिन'।

अन्तिम बात—इस कार्य को करते हुए मुझे बार-बार उस खेदपूर्ण परि-स्थिति की ओर ध्यान देना पड़ा कि आज हमारी शिक्षा-व्यवस्था, हमारे शिक्षण, शिक्षण-पाठ्यक्रम, शिक्षा से लाभ उठाने वाले परिवार और छात्र-छात्राएं सब किस प्रकार के दुष्ट-वृत्त (विशस सर्कल), किस 'वदतो व्याघातः' के शिकार हो गये हैं। सब सोपानों पर 'सांप और सीढ़ी' वाला खेल है, हर कदम पर शृंगापत्ति (डाइलेमा) है। यह हमने ही निर्मित की। न बापू की बुनियादी शिक्षा, न गुरुदेव का आश्रमिक संघ और शान्तिनिकेतन, न ऋषि दयानन्द के गुरुकुल, न अरविन्द का 'आरोविल'—कोई उस जर्जर शृंखला को पूरी तरह तोड़ नहीं सके। सपने जरूरी हैं, पर व्यावहारिका उससे अधिक आवश्यक है।

जनसंख्या बढ़ेगी तो शिक्षा भी बढ़ेगी। साक्षरता बढ़ेगी तो पाठ्य-पुस्तकें

भी लगेंगी ? उस अनुपात में हम लोगों को नौकरियां दे पा रहे हैं क्या ? उस अनुपात में औद्योगिक विकास हो रहा है क्या ? अन्यथा फिर किसी डिक्टेटर की राह देखें जो 'बेअर-फुट' टीचर और डॉक्टरों को चीन की तरह, गांवों की ओर खींचकर ले जायेगा। यह हमें नहीं भूलना चाहिए कि विश्व के महादेशों— रूस और अमेरिका में बाध्यतापूर्वक अनिवार्य सैनिक शिक्षा के दो वर्ष हर छात्र के भाग्य में हैं। हम यहां उससे वंचित हैं—यह खुशी की बात है। या हमारी अनुशासनहीनता का एक कारण है ?

वही बात धार्मिक और नैतिक शिक्षा की भी है। बांगला देश में हाल में अरबी भाषा अनिवार्य की गई। फरवरी, 1983 में वहां चालीस छात्र इसका विरोध करने पर सरकारी गोलियों के शिकार हुए। क्या यह उचित है ? पोलैंड में क्या हो रहा है ?

इन सब प्रश्नों में न जाकर हम केवल इतना ही कहेंगे कि इस तरह के निबंध पढ़ने पर हमारे मन में यही ठोस सुझाव देने की बात उठी कि हर जिले में एक 'लेखक-प्रशिक्षण' शिविर होना चाहिए। 'राइटर्स वर्कशाप' अमेरीका के हर कैंपस पर होता है। स्कूलों में भी। अभिनय, संगीत, चित्रकला, शिल्पकला, वास्तुकला सब हम सिखाते हैं। सृजनात्मक साहित्य क्यों हम भगवान भरोसे छोड़ देते हैं। इसीलिए हमारी कविता, कहानी, गद्य की अनेक विधाओं का लेखन आगे नहीं बढ़ रहा है। वह बहुत उबाऊ (बोरिंग) हो रहा है। क्या शिक्षा-विभाग (राजस्थान) इस दिशा में पहल करेगा ?

मैं तो हर काम से कुछ सीखता हूं। इस उम्र में भी छात्र हूं। वही बना रहना चाहता हूं। शिक्षा देने का मुझे अधिकार नहीं, 'आत्म-शिक्षण' ही सबसे बड़ा संस्कार है। उसके बिना 'संस्कृति' की चर्चा छूंछी है, झूठी है।

36-ए, शेक्सपीअर सरणि
कलकत्ता-700017

अनुक्रम

रेती के रात-दिन

मिलती रहा करो

वीणा गुप्ता

हमें कॉलोनी में आये करीव छह महीने हो गये थे। एक वार वन्टी के पापा टूर पर गये हुए थे, इसलिए सोचने लगी कि शहर जाकर अपने पुराने पड़ौसियों से ही मिल आऊं। पुराने पड़ोसियों की सोचते ही मिसराइन का नाम एका-एक मस्तिष्क में घूमने लगा और मैं सोचने लगी कि क्या वह अव भी वैसी ही होगी या कुछ वदल गई होगी। काफी देर विचार करने पर भी मैं कुछ निर्णय नहीं कर पाई, तो सोचा, चलो उन्हीं के यहां जाकर देखा जाये। इसके साथ ही मन में एंक शंका भी उत्पन्न हो गई कि अगर मिसराइन की आदत पहले जैसी ही होगी तो दो घण्टे के मौन-व्रत की सजा भोगनी पड़ेगी। अच्छी तरह सोच-विचार कर मैंने निर्णय लिया कि उनके यहां नहीं जाना चाहिए।

थोड़ी ही देर वाद मैंने वन्टी को तैयार किया और सिटी वस-स्टेण्ड पर जा पहुंची। वस लगभग तैयार ही मिल गई। भीड़ भी अधिक नहीं थी। वस के चलते ही मैं सोचने लगी कि अच्छे मुहूर्त में निकली हूँ सो समय भी अच्छा ही वीतेगा।

करीव आधे घण्टे के वाद वस ने गुमानपुरा पहुंचा दिया। उतर कर जैसे ही मैं गली में मुड़ने लगी तो मिसराइन का घर सामने दिखाई दिया। उनके चक्कर में फंस जाने के डर से मैंने दूसरे रास्ते से मुहल्ले में जाना उचित समझा। इसलिए वापस सड़क पर आकर गली के दूसरे मोड़ की ओर चल दी।

"अरे वहन जी आप!"

यह तीखी आवाज कानों में पड़ते ही मैं सिर से पांव तक जड़ हो गई। शैतान का नाम लो और वह सामने आ जाये वाली कहावत बिलकुल सत्य सिद्ध हुई। मिसराइन से वचने के लिए तो रास्ता वदला था और वही सामने खड़ी मुस्करा रही थी।

"आज तो आप वहुत दिनों वाद मिली वहन जी! लगता है कॉलोनी में

जाकर हमें तो भूल ही गई हो। कैसी तबियत है अब आपकी ? अरे, यह बन्टी तो बहुत बड़ा हो गया अब। देखो न, छह महीने में ही कितना अन्तर पड़ जाता है। अपनी शीलू भी अब काफी बड़ी हो गई है। अरे, आप तो कुछ बोल ही नहीं रही। क्या बात है कुछ परेशान-सी दिखाई दे रही हो !"

औपचारिकता के नाते मैंने मुस्कराने का प्रयत्न किया और अपने भावों को छिपाते हुए उत्तर देने ही जा रही थी कि मिसराइन फिर से बोल उठी।

"बहन जी आज तो आपने साड़ी बहुत बढ़िया पहन रखी है। वही सीताराम की दूकान से ही खरीदी होगी। वैसे वह दूकानदार तो एक नम्बर का चोर है। लेकिन आपको क्या, भाई साहब की तो उससे अच्छी दोस्ती है। इसलिए आपसे तो उसका व्यवहार ठीक ही होगा। अरे हां, आज भाई साहब साथ नहीं आये। कहीं बाहर गये हैं क्या ?"

मिसराइन बोलती जा रही थी। मुझे उसकी बातें कानों में ठूंसनी पड़ रही थीं। अपनी बातों में मिसराइन यह भी भूल गई कि उसने सब्जी तुलवा रखी थी। उसकी बात को बिना ब्रेक की गाड़ी की तरह आगे ही आगे बढ़ती देख बेचारा सब्जी वाला भी बोल पड़ा, "आप सब्जी तो ले लीजिये, फिर संतोष से बातें कीजिये।"

"हां, हां, ले रही हूँ सब्जी। छह महीने बाद तो बहन जी मिली हैं। इनके हाल-चाल तो पूछने दे। अच्छा ठहर, पहले तुझे ही निपटा देती हूँ।"

यह कहकर मिसराइन सब्जी वाले के साथ उलझ गई। तभी मैंने चैन की सांस ली। मैं तो सोच रही थी कि अब दस-पन्द्रह मिनट तो वह उसी से निपटने में लगा देगी। कम से कम इतनी देर तक उनकी भौण्डी आवाज सुनने से बच जाऊंगी। परन्तु मेरी किस्मत ऐसी नहीं थी। दो मिनट में ही सब्जी वाले का हिसाब करके मिसराइन फिर पलटी और मुझ गरीब पर धावा बोल दिया।

"बहन जी, आपकी देवरानी के यहां तो दूसरा बच्चा होने वाला था न ! अब तक तो हो गया होगा। क्या हुआ ? अरे हां, इस बात पर ध्यान आया कि अब तो आपके देवर ने बीड़ी-सिगरेट पीना छोड़ दिया होगा। भला यह भी शौक है। दूध पीओ, तो शरीर को भी लगे। मैंने तो मिसरा जी को साफ-साफ कह दिया कि मेरे साथ रहना है तो यह सब छोड़ना पड़ेगा। क्या मजाल उस दिन के बाद उन्होंने हाथ भी लगाया हो तो तम्बाकू को···।"

कहते-कहते मिसराइन ऐसे अकड़ गई जैसे हिमालय पर तिरंगा सबसे पहले उसने ही फहराया हो। मैं अभी भी नहीं सोच पाई थी कि उससे पीछा कैसे छुड़ाया जाये कि फिर से गोले फूटने आरम्भ हो गये।

"आप को पता है बहिन जी, पिछले महीने तो आपके सामने वाले वर्मा जी

के यहां क्या कुहराम मचा था। राम रे राम ! मैं तो सुनकर ही दंग रह गई। ऐसी लड़ाई तो देखी न सुनी। फिर कोई बात भी तो नहीं थी···बस इसी बात पर पति-पत्नी में झगड़ा हो गया कि वर्मा जी बोलते बहुत हैं। अब आप ही बताओ बहन जी, यह भी कोई बात हुई झगड़ा करने की।"

मैं तो मैं, अब बन्टी भी ऊब गया था। छह साल का था। बातें तो समझ ही लेता था वह भी बेचारा। काफी देर तक तो चुप रहा। मैं तो हैरान थी कि इतनी देर तक वह सुनता कैसे रहा। जब उसने देखा कि मिसराइन चुप ही नहीं हो रही थी तो वह खुद ही बोल पड़ा। "क्या आन्टी आप खुद तो पटाखों की तरह चटपट बोले जा रही हो। मम्मी को तो कुछ बोलने ही नहीं देतीं।"

यह सुनते ही मिसराइन सकपका गई। बात ही ऐसी थी। अपनी झेंप को छिपाते हुए वह बोली, "अच्छा बहन जी, अब तो मैं चलती हूँ। काफी देर हो गई घर से निकले हुए। लेकिन आप घर जरूर आना। यहाँ से जाने के बाद आप एक बार भी हमारे यहाँ नहीं आईं। और तो मुहल्ले में मेरा मन किसी से मिलता नहीं। एक आप ही थीं जिसके साथ सुख-दुख की कह सुन लेती थी। लेकिन आपके जाने के बाद···खैर अधिक न सही महीने में एक बार तो आती ही रहा करो।"

जाते-जाते भी मिसराइन बोलती रही और मुझे ऐसा लगने लगा जैसा जेल से छूटते समय कैदी को लगता है। मैं सोचने लगी कि जब सड़क पर खड़े-खड़े ही आधे घण्टे की सजा मिली है तो घर जाने की गलती पर तो दो घण्टे की सजा भी कम नहीं होती। तभी यह बात भी दिमाग़ में आई कि वास्तव में मेरे सिवाय मुहल्ले में कोई दूसरी मूर्ख नहीं थी जो उसकी धाँय-धाँय सुनने के लिए खुद चलकर उसके यहां जाती। साथ ही मेरा मन ऐसा कसैला हो उठा कि सामने से वापस कॉलोनी की ओर आती हुई बस को देखते ही उसमें चढ़ गई। ☐

बाज आए ऐसी डॉक्टरी से

अब्दुल मलिक खान

छुटपन में हम अदाकार बनने के ख्वाब देखा करते थे। लेकिन हमारे घर वाले हमें एक निहायत शरीफ और नेक डॉक्टर बनाने पर तुले हुए थे। इसलिए हमें नाजुक उम्र में ही जीव-विज्ञान की भारी भरकम किताबों से फ्री-स्टाइल करनी पड़ी। हाई स्कूल में थे तो कई मेंढक मारे। मेंढक की आंख पर एक झिल्ली-सी होती है, जिसे वह पानी में कूदते समय या कीचड़ में घुसते समय अपनी आंखों पर चढ़ा लेता है। ठीक उसी तरह आज इन्सान भी अपनी आंखों पर पर्दा डाल कर भ्रष्टाचार के कीचड़ में घुसता चला जा रहा है। शायद इसीलिए वैज्ञानिकों ने मनुष्य और मेंढक में काफी समानता वतलाई है।

हमारे दूर के चाचा के ताऊ के लड़के एक असरदार ओहदे पर मुलाजमत करते थे। इसलिए हमें मेडिकल ट्रेनिंग में दाखले वगैरह की कोई दिक्कत नहीं हुई और कुछ वरसों में घिसते पिटते हमने डॉक्टर की डिग्री लपक ही ली।

एक बार मेडिकल कॉलेज से प्रेक्टिकल एक्सपीरियेन्स के लिए जब हमें कमरुद्दीन हॉस्पिटल भेजा गया तो हमारे इंजेक्शन पकड़ने के ढग को देखकर वहां की चुलबुली नर्स मिस क्यू हँसते हुए बोली थी—"सर आपको तो इंजेक्शन सीरिंज पकड़नी भी नहीं आती, आप इंजेक्टिंग-वर्क कैसे करेंगे?"

हमने फौरन जवाब दागा था- "अजी, इंजेक्टिंग-वर्क करेंगे हमारे कम्पाउन्डर्स। हमारा काम तो रहेगा कागज़ पर नुस्खा उतारना और मरीज को थमा देना।"

फिर हमने थोड़ा सीरियस वनते हुए कहा था—"हम तो सिर्फ सीरियस केस ही सम्हालेंगे।"

और सचमुच आज तक हमने सीरियस केस ही सम्हाले हैं। अगर कोई छोटा मोटा केस हाथ में ले भी लिया तो उसे हमने अपने स्तर के मुताबिक सीरियस बना कर ही दम लिया।

खैर जैसे-तैसे हम डॉक्टर हो गए और एक ज़िम्मेदार डॉक्टर की पोस्ट पर हमें लगा दिया गया।

शादी हुई हमारी, सर्विस लगने के साल भर बाद। उस वक्त तक हम मरीजों का उद्धार करने वाले डॉक्टर के रूप में खासा नाम कमा चुके थे।

एक हज़रत हमारे पास आए, उनके कान में मामूली-सा दर्द था। हमने उनको दवा लिख दी। दो दिन बाद वे फिर आए, उनके कान का दर्द सिर दर्द में तब्दील हो गया था। हमने फिर नुस्खा लिख मारा तो उनके पेट में दर्द होकर एक आँत फूल गई। उनको तसल्ली देकर हमने एक कोर्स और लिख दिया। अस्पताल से जाने के बाद उनको अचानक रिएक्शन हो गया और उनके पड़ौसी उनको ठेले में डाल कर पागल की-सी हालत में हमारे पास ले आए। हमने उनको हॉस्पिटल में भरती कर लिया, यह जांच करने के लिए कि उनको रिएक्शन किसी कैप्सूल को लेने से हुआ था या हमारे द्वारा लिखे गए कोर्स का बिल देखने से।

डॉक्टर की नौकरी भी क्या नौकरी है, न दिन को चैन और न रात को आराम। मरीजों (भूतपूर्व) की सदाएं (आत्माएं) हमको कभी चैन नहीं लेने देतीं। कुछ दिनों तक तो हम सेवा-भावी रहे और उसके बाद सेवा-भावी से मेवा-भावी हो गए।

वह न जाने कैसी मनहूस घड़ी थी कि हमें अपने हाथ से पहला इंजेक्शन लगाना पड़ा। उल्लेखनीय बात यह रही कि हमारा पहला इंजेक्शन ही चौका लगा बैठा। इंजेक्शन की सुई टूटकर मरीज के बदन में रह गई। कुछ दिनों बाद उस जगह पर मवाद भर गया। चार महीने की चीरा-फाड़ी और मरहम-पट्टी के बाद हमारे इंजेक्शन का असर ख़त्म हुआ।

एक बार एक मौलाना साहब दांत उखड़वाने हमारे पास आए। हमने उनके मसूड़े में चमड़ी सुन्न करने वाला इंजेक्शन लगाया और ऊपर वाले का नाम लेकर आँखें बन्द करके दांत खींच डाला। दांत निकलते ही हम एक झटके के साथ पीछे लुढ़के और बगल में रखे ऑक्सीजन सिलेंडर पर जा पड़े। ऑक्सीजन सिलेन्डर चारों खाने चित्त और उसके साथ हम भी। दांत तो उखड़ गया लेकिन मौलाना साहब की एक आँख भूकम्प में धँसी जमीन-सी शरमा-कर अन्दर घुस गई।

बाद में पता लगा कि उखाड़ना तो बत्तीसवां दाँत था लेकिन हमने उसकी बजाय उसके पड़ौसी को बेदखल कर दिया था। दूसरे दिन हमने उस दाँत को भी निकाल दिया जिसकी वजह से इतना फसाद उठ खड़ा हुआ था। हमने तो उनसे यहाँ तक कह डाला था कि आप तो अपने सब दाँत उखड़वा लीजिये। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। लेकिन वे एक बीमार दाँत की इतनी बड़ी

कीमत नहीं देना चाहते थे। ख़ैर ! हमने एक की जगह दो दाँत उखाड़ कर ही सब्र कर लिया। आज भी उनकी बैठी हुई आँख देख कर हम मन-ही-मन मुस्करा उठते हैं।

इत्तिफाक से दो दलों में झगड़ा हो गया। डॉक्टरी रिपोर्ट तो हमें ही लिखनी थी। जाँच करके जैसे ही हम बाहर आए, दो लम्बे-चौड़े आदमियों ने हमें अलग बुलाकर पूछा—"चोट कैसी है ?"

"घाव बड़ा खतरनाक है, सात इंच लम्बा और तीन इंच गहरा।" हमने साफ़-साफ़ बता दिया।

"आपने घाव दूरबीन से देखा होगा इसीलिए वह इतना बड़ा दिखाई दिया है।"

उनमें से छोटी आँखों वाला आदमी हमें आँखें दिखाता हुआ बोला—"घाव कितना ही बड़ा हो लेकिन डॉक्टरी रिपोर्ट में आपको सिर्फ खरौंच ही बतानी है, वरना ठीक नहीं होगा।"

आध घण्टे बाद चार आदमी एक और पेशेन्ट को लाए। उसको भी झगड़े में चोट लगी थी। हमने देखा वह एक मामूली-सी खरौंच थी। वे आदमी कहने लगे—"डॉक्टर ! इस खरौंच को इतना एनलार्ज कर दो कि डॉक्टरी-रिपोर्ट के कागज़ पर यह आठ इंच लम्बा और चार इंच गहरा घाव बन जाए।"

एक झबरी मूंछों वाला ख़ास अंदाज़ में बोला—"आप हमें तो जानते ही हैं।"

कभी आपसी लड़ाई में किसी को मामूली चोट लग जाती है तो उसके साथी कहते हैं कि डॉक्टरी रिपोर्ट में तलवार जैसी चीज़ के घाव का हवाला देना। और अगर किसी को तलवार का घाव लग जाता है तो उसके प्रतिद्वन्द्वी दबाव डालते हैं कि मामूली चोट बताना।

अब आप ही बताइये ऐसे में हम क्या करें। शुरू में हम सबकी हाँ में हाँ मिला देते लेकिन लिखते वही जो असलियत होती। इस आदत की वज़ह से कई बार हमारी मरम्मत होते-होते बची।

पिछले साल जनवरी की एक ठंडी रात को बारह बजे जीप लेकर एक आदमी हमें बुलाने आया। हम अपना बैग लेकर उसके साथ हो लिये। शहर से बाहर जाकर उसने पिस्तौल की नोक दिखाकर हमारी जान खुश्क़ कर दी। हमारी आँखों पर पट्टी बाँधकर बड़ी देर तक जीप दौड़ाता रहा। जब हमारी आँख खुली तो चारों ओर घनघोर अंधेरा फैला हुआ था। झींगुरों की चिन-चिन से हमने अंदाज लगाया कि हम किसी सुनसान जंगल में हैं। एक पेड़ के नीचे लालटेन के उजाले में एक खूंखार आदमी पड़ा हुआ था। उसकी जांघ

में गोली लगी थी। जैसे ही हम वहां पहुंचे वह हमें ऐसे घूरने लगा जैसे गोली हमने ही मारी हो। जैसे-तैसे हमने गोली निकाल कर उसकी मरहम-पट्टी की।

जब हम वहाँ से चलने को हुए तो एक लम्बे से आदमी ने कसकर हमारा गिरहवान पकड़ लिया। हम सकते में आ गये। वह अपनी पकड़ मजबूत करते हुए बोला—"इस बात का जिक्र किसी से मत करना, समझे ! वरना···।"

उसकी बात पूरी होने से पहले ही हमने बच्चे की तरह हाँ, में सिर हिला दिया।

आँखों पर पट्टी बांधकर वही आदमी हमें शहर के बाहर छोड़ गया। दूसरे दिन अखबार में छपा था "डाकू पुलिस संघर्ष, डाकू सरदार घायल होकर भागने में सफल।"

रात की बात याद करके हमारे रोंगटे खड़े हो गए। हमने ऊपर वाले का लाख-लाख शुक्रिया अदा किया।

कुछ दिनों पहले फिर एक बखेड़ा खड़ा हो गया। हमने खुद उनकी नब्ज टटोली, नब्ज गायब थी। स्टेथस्कोप लगाकर दिल की धड़कन का जायजा लिया था लेकिन वह भी साथ छोड़ चुकी थी। नियमानुसार हमने उन साहब को मृत घोषित कर दिया था। उनकी बीवी ने हमारे सामने ही अपनी चूड़ियां तोड़ डालीं और चीख मारकर बेहोश हो गई।

उनकी अर्थी सजाकर लोग श्मशान पहुँच गए। चिता बनाई गई, लेकिन चिता में आग रखने से पहले एक चमत्कार हुआ। वे महाशय चिता पर से अँगड़ाई लेकर इस तरह उठ बैठे मानो बिस्तर पर से सोकर उठे हों।

कभी सुना आपने कि मुर्दा जी उठा। लेकिन उस वक्त ऐसा ही हुआ। उनका जी उठना हमारे लिए मुसीबत बन गया। अर्थी को लेकर भीड़ का सैलाब नारे लगाता हुआ हमारे घर की तरफ मुखातिब हो गया। उनका कहना था कि हम डॉक्टर हैं या हज्जाम। अब आप ही फैसला कीजिये कि जिसने कभी उस्तरा छुआ तक नहीं उसे हज्जाम कहना कहाँ का न्याय है।

लोगों को शिकायत थी कि हमने ज़िन्दा आदमी को मृत कैसे घोषित कर दिया ? अगर चिता में आग लगा दी जाती तो···?

हम मन ही मन सोच रहे थे कि अगर चिता में वक़्त पर आग लगा दी जाती तो यह बखेड़ा ही खड़ा नहीं होता।

कुछ लोग तो यहां तक नारे लगा रहे थे कि इस डॉक्टर की अर्थी निकालो। पर सही मानना साहब, अगर उन महारथी की जगह हम होते तो एक ज़िम्मेदार डॉक्टर की घोषणा को कभी गलत साबित करने की कोशिश नहीं करते।

हम सच कहते हैं, उनके दिल की धड़कन बिल्कुल बन्द थी और डॉक्टरी

सिद्धान्तों के मुताविक पूरी जांच करने के बाद हमने उन्हें मृत घोषित किया था। यह और बात है कि यमराज को बीमा कम्पनी वालों पर तरस आ गया हो। कारण कुछ भी रहा हो लेकिन इसमें हमारी कोई गलती नहीं थी।

गलती तो हमारी उस दिन भी नहीं थी जिस दिन कि हमने एक इंसान के बच्चे की कैंसर वाली आँख निकालने की बजाय दूसरी आँख निकाल फेंकी थी। लेकिन लोगों ने जरा-सी बात का बतंगड़ बना दिया। अरे भई, आँख निकालनी थी और आँख ही निकाली। जिगर तो नहीं निकाल दिया था।

इतनी सेवा करने के बावजूद भी लोग न जाने क्यों नहा-धोकर हमारे पीछे पड़े हैं। इसलिए हमें कहना पड़ रहा है कि, "बाज़ आए ऐसी डॉक्टरी से।"

□

टांग खींचने का सुख

भगवती लाल व्यास

प्रामाणिक साक्ष्य के अभाव में हम फिलहाल यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि वह ऐतिहासिक क्षण कौन-सा था जिसमें 'टांग खींचना' अभियान का शुभारम्भ हुआ। यदि संस्कृति के सौभाग्य से उस टांग के अवशेष मिल जाएं जिसे सबसे पहले खींचा गया था तो वे अवशेष राष्ट्रीय पुरातत्त्व संग्रहालय की अमूल्य सम्पत्ति होंगे। यदि टांग के अवशेष न मिलें तो हम उन हाथों के अवशेषों से भी सन्तोष धारण कर सकेंगे जिन्होंने सर्वप्रथम किसी टांग खींचने का सर्वथा मौलिक, अप्रतिम शौर्ययुक्त एवं साहसिक कार्य कर खिचाई की दुनिया में एक नया आयाम उद्घाटित किया।

वैसे टांग खींचने के विचार का उद्गम तो रामायण काल में ही हो चुका था। उस काल में अंगद नाम का एक परम पुरुषार्थवान महा टांगधारी व्यक्ति था। कई दिग्गजों ने उसकी टांग खींचने के योजनाबद्ध आयोजन किये किन्तु कहा जाता है कि टांग खींचना तो दूर रहा वे हिला भी नहीं सके। कालान्तर में टांगों की शक्ति सम्भवतः क्षीण होती गई, परिणामस्वरूप इस अभियान का श्रीगणेश सम्भव हो सका।

द्वितीय विश्व युद्ध, औद्योगिक क्रान्ति और सांस्कृतिक पुनर्जागरण काल के उपरान्त ही हमको इस अभियान के सफल आयोजनों के संकेत मिलते हैं। इस काल में विशेष रूप से राजनैतिक, औद्योगिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में टांग खिचाई अभियान का सूत्रपात हुआ।

जहां तक हमारे देश का सवाल है स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय से ही यह प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तो इस क्षेत्र में हमने आशातीत प्रगति की। ज्यों-ज्यों स्वतन्त्रता प्रौढ़ होती गई, त्यों-त्यों टांग खिचाई कला का चतुर्मुखी विकास होता गया, टांग खींचने, टांग खिचवाने, खिची हुई टांग को सहलाने और अनखिची टांग को बहलाने की नाना पद्धतियां

आविष्कृत होती गयीं।

दरअसल टांग खींचने को असांस्कृतिक और अशिष्ट कहना संस्कृति के अद्यावधि ज्ञान और शिष्टाचार संहिता के नवीनतम संस्करण के प्रति अपना अज्ञान प्रदर्शित करना होगा। अगर हमसे पूछा जाए तो हम सर्वेक्षण के ताज़ा आंकड़ों का सन्दर्भ देते हुए यह सिद्ध कर देंगे कि आजकल टांग खींचने की सर्वाधिक घटनाएं तथाकथित शिष्ट और सांस्कृतिक समाज में ही घटित होती हैं। साहित्य जो संस्कृति का ही एक महत्वपूर्ण अंग है इस कला के प्रयोग का विशिष्ट क्षेत्र बनने का गौरव प्राप्त कर चुका है। सन्त से पन्त तक, आला से निराला तक और रामधारी से नामधारी तक यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आई है और आज वामधारी से दामधारी तक हर साहित्यकार इस बात में गौरव महसूस करता है कि वह किसी की टांग खींच सकता है या अपनी टांग किसी से खिचवा सकता है।

टांग खींचने की तकनीकों का इतना विकास हो चुका है कि अब किसी नौसिखिया टांग खींचने वाले के सामने यह समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वह किस तकनीक का प्रयोग करे ?

सुना है भारत सरकार में एक नये मन्त्रालय की स्थापना हुई है और वह है खेल मन्त्रालय। खेल मन्त्रालय से हमारा विनम्र अनुरोध है कि टांग खींचने की अब तक विकसित तकनीकों को संरक्षण प्रदान करते हुए इसकी भावी प्रगति के लिए विभिन्न क्षेत्रों से योग्य प्रशिक्षकों की नियुक्ति करें ताकि प्रशिक्षुओं की समस्या का समाधान हो सके। हमारा एक अन्तिम सुझाव यह भी है कि टांग खींचने की ऐतिहासिक गरिमा तथा इसके सांस्कृतिक वैभव को ध्यान में रखते हुए यदि इसे राष्ट्रीय स्पोर्ट्स की सूची में सम्मिलित कर दिया जाए तो न केवल यह देश की वर्तमान समस्याओं के लिए समाधान में सहायक होगा अपितु इस क्षेत्र में हमारे देश को विश्व के अन्य देशों के समक्ष अग्रिम पंक्ति में भी खड़ा कर सकेगा। आशा है हमारे देश का खेल मन्त्रालय इस गम्भीर समस्या पर खेल-खेल में ही कोई निर्णय लेकर इसकी घोषणा शीघ्र करेगा ताकि टांग खींचने तथा खिचवाने वाले अनगिनत अभ्यर्थियों के सुख का सम्वर्द्धन हो सके। □

हम बने संचालक

भगवती प्रसाद गौतम

भाई, सच कहें, रविवार की सुबह हफ्ते भर की सबसे प्यारी सुबह होती है। न विस्तर छोड़ने की जल्दी और न स्कूल की शोर भरी इमारत में घुसने की झंझट। आखिर, छुट्टी का दिन ही तो ठहरा यह !

हां, तो ऐसी ही एक सुबह किसी दैनिक का साप्ताहिक संस्करण हमारे हाथ में था और शायद देवकीनन्दन पाण्डे की जानी-पहचानी आवाज में समाचार प्रसारित होने लगे थे कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। हमने तुरन्त कुण्डी खोली तो दो महानुभावों के पवित्र दर्शनों का लाभ हुआ। सूरतें परिचित-सी थीं किन्तु मस्तिष्क पर लाख हथोड़े मारने पर भी उनके नाम याद नहीं आ रहे थे। फिर भी हमने अपनी आदत के अनुसार आत्मविश्वास का तीर फेंका, "ओ हो ! आइए, आइए · आज कैसे रास्ता···इधर··"

हमारा संकेत पाते ही वे दोनों मुस्कराते हुए दस साला कुर्सियों पर जम गये। हम भी आतुर निगाहों से उनके हाव-भाव पढ़ते रहे। उनमें से एक सज्जन मेरे हाथ से अखबार झपटकर उसकी सुर्खियां टटोलने लगे और दूसरे कमरे में टँगी पेंटिंग में कलाकार का नाम खोजने में व्यस्त हो गये।

इस बीच पैदा हुई खामोशी को तोड़ने की पहल हमारी ओर से ही हुई— "हां, तो कहिए श्रीमन्, क्या सेवा की जाए ?"

"सेवा ? सेवा तो हमें करनी चाहिए, कविवर !" बुजुर्ग सज्जन ने युवक की ओर नजर फेंकते हुए कहा।

"इसमें कोई शक नहीं।" युवक ने भी सहारा लगाया।

"खैर," हमने नम्रतापूर्वक कहा, "यह तो वक्त ही बतायेगा कि सेवा का अधिकार किसका है ?"

हम तीनों ने एक साथ ठहाका लगा दिया। कुछ देर के लिए लगा जैसे खामोशी भरा एक अन्तराल फिर घिर आया है। बुजुर्ग की निगाहें संस्करण के

मध्य पृष्ठों पर भटकने लगीं। युवक अपने बैग में कुछ कागजात टटोलने लगा और हम थे कि खयालों की दुनिया में न जाने कहां खोये जा रहे थे। तभी युवक ने अपना उद्देश्य प्रकट कर दिया, "दरअसल हम आपको एक कष्ट···"

कष्ट? कैसा कष्ट! आप तो आदेश दीजिए, आदेश। हम इन्कार नहीं कर सकते।" हमने सजग होते हुए अपनी कमर सीधी की।

"आपको पता ही है," वे रूप-रेखा प्रस्तुत करने के मूड में बोले, "इस समय कितना शानदार फागुन मेला चल रहा है। इसी के दौरान नगरपालिका मंच पर एक सांस्कृतिक संध्या का आयोजन भी परम्परा से होता आया है।"

"वाह! यह तो बहुत सुन्दर परम्परा है।" हमने चेहरे पर गम्भीरता लाते हुए कहा।

'आप हैं लक्ष्मण जी भाई," युवक ने बुजुर्ग सज्जन की ओर संकेत करते हुए बात बढ़ाई—"इस सांस्कृतिक संध्या समिति के अध्यक्ष·· और मेरा नाम है···खैर वह सब आपको पता है ही। मैं इसमें सचिव के पद पर हूँ।"

बीच ही में बात काटते हुए हम बोल उठे—"तो फिर आप तो यह बताइए कि हम क्या मदद कर सकते हैं इसमें?"

"इस आयोजन के संचालन का भार बस आप पर ही समझिए।" बुजुर्ग ने फौरन अपना पूर्व निश्चित प्रस्ताव हमारे सामने बिछा दिया।

"संचालन?" हमारे मुंह में एकाएक लार छूट आई जैसे मेरठ चाट भण्डार वाली दही-बड़े की प्लेट हमारी टेबल पर आ गई हो। मगर हमने बड़े ही संयम व संजीदगी से काम लिया—"यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है, मित्र। ऐसा-वैसा आदमी इस भार को उठाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

"इसीलिए तो हम आपकी शरण में आये हैं, श्रीमन्।"

"शरण में? देखिए, आप हमें शर्मिदा करने की कोशिश कर रहे हैं।"

"बिल्कुल नहीं, यह हकीकत है। आप से ज्यादा योग्य संचालक इस समय हमें इधर कोई नजर आ ही नहीं सकता।"

"जी नहीं, आप किसी अनुभवी व्यक्ति को पकड़ें तो ही ठीक रहेगा।"

"किसी दूसरे व्यक्ति का तो सवाल ही नहीं उठता। हम पूरा भरोसा लेकर आये हैं। यह रहा आपके नाम औपचारिक पत्र।" बुजुर्ग ने युवक के हाथ में अटका पत्र हमारे सामने रख दिया।

उसे पढ़े बिना ही हमने पूछा—"लेकिन होगा कब यह कार्यक्रम?"

"कल शाम को। ठीक छत्तीस घंटे बाद।" युवक ने जोर देते हुए कहा और हमने एक और सामूहिक ठहाका लगा दिया।

तभी बिस्कुट-चाय की ट्रे हमारे बीच आ गई। इधर-उधर की बात-चीत करते हुए हम उनसे जूझने लगे। दौर समाप्त होते ही दोनों आगन्तुक उठ

लिए। बुजुर्ग ने हमें आगाह किया—"कल आप केवल आधा घण्टा पहले मंच पर पधार आएं। बाकी सब व्यवस्था पहले से ही हो चुकेगी।"

हमने कहा—"ठीक है।" और वे लोग चरण छूने जैसी शैली में अभिवादन करते हुए प्रस्थान कर गए।

... ..."संचालक!" हमारे दिल की कली खिल उठी—"कल हम सांस्कृतिक संध्या के संचालक होंगे। कितना बड़ा, कितना गरिमामय पद! लोगों की निगाहें हमारे चेहरे पर होंगी। बच्चे-बूढ़े, नर-नारी—सभी हमारी आवाज, हमारी उद्घोषण क्षमता, हमारी प्रतिभा, हमारे व्यक्तित्व का मूल्यांकन करेंगे।"

सोचते-सोचते हमें बिनाका वाले अमीन सयानी की झटकेदार आवाज का स्मरण हो आया। कितनी मौलिकता होती है उसके प्रोग्राम में! जसदेवसिंह, सुशील दोसी, रामरिख मनहर, हुल्लड़ मुरादाबादी—एक-एक करके न जाने कितनी हस्तियों की आवाजें हमारे कानों में जोर आजमाने लगीं।

हम सारी सुस्ती छोड़कर आदमकद आईने के सामने खड़े हो गालों पर उगी काली-कलूटी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे। आखिर, अगले दिन की रूपरेखा पर दिमाग दौड़ाते हुए हमने शेविंग कर ही डाली। अब तो नहाते-धोते, खाते-पीते कमरे में इधर-उधर टहलते, किसी मित्र से मिलते और सब्जी मंडी में खरीदारी करते हुए भी एक ही धुन सवार थी—संचालन! सार्वजनिक मंच पर सांस्कृतिक संध्या का संचालन!

रात किस तरह करवटें बदलीं और कब आँख लगी, हमें कुछ भी पता नहीं। मगर सुबह जल्दी ही उठ गये। अपने दैनिक कार्यक्रमों से निवृत्त हुए, आड़े-टेढ़े कौर मुंह में डाले, दिन भर कार्य बेमन से निपटाया, शाम हुई, साफ धुली पोशाक पहनी और चल पड़े मंच की ओर।

मंच के सामने बिछे फर्शों पर छोटे-छोटे अनगिनती बच्चे या तो छलांगें भर रहे थे या 'नटराज' में लगी नई फिल्म के किसी चालू गाने की धुन पर बेतहाशा थिरक रहे थे। एम्प्लीफायर के व्यवस्थापक को छोड़कर मंच के आस-पास कोई भी सम्भ्रांत व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा था। न अध्यक्ष का पता था, न सचिव का। पता था तो केवल हमारा अपना क्योंकि हमें संचालन करना था और आधा घंटा पहले 'पधार' आना था। सो हम चले आये।

आठ बजने को हुए। तभी युवा सचिव आ पहुंचे। हमने कहा—"क्या-क्या व्यवस्था बाकी रह गई है, बंधु?"

वे बोले—"जी, सही बात यह है कि यह बूढ़ा खूसट अध्यक्ष तो बन गया, पर है बड़ा ढीला आदमी। मैं लाता हूं स्साले को पकड़कर।" और वे खिसक लिए।

कुछ देर बाद लक्ष्मण जी भाई आ पहुंचे। हमने पूछा—"कार्यक्रम कब तक शुरू कर देना है, भाई साहब ?"

"शुरू क्या करना है जी," वे कहने लगे—"इन छोकरों के हाथ में तो कभी कोई काम सौंपना ही नहीं चाहिए। इन्हें तो बाल संवारने और कपड़ों की क्रीज सम्भालने से ही फुरसत नहीं और बन गए सचिव। अब आप ही देखिए न, अभी तक भी कहीं पता है उसका ?"

"मगर वे तो अभी-अभी आपकी तलाश में ही गये हैं शायद।" हमने बात को सम्भाला।

इसी बीच सचिव लौट आये। हम तीनों मंच पर जा बैठे। अतिथियों व सम्भ्रांत नागरिकों के बैठने की व्यवस्था मंच के सामने ही की गई थी। तभी हमें ध्यान आया—"आइटम्स की सूची कहाँ है ?"

"वह तो अभी-हाल बन जाएगी।" सचिव ने बेफिक्री से जवाब दिया।

"और आपने जिन कलाकारों को आमन्त्रित किया है उनकी सूची ?"

"उसकी क्या जरूरत है ? अजी, वे तो अपने आप चले आयेंगे।" बुजुर्ग ने मुस्कराते हुए कहा।

हम उदास हो गये। आखिर किसी भी आयोजन की कोई पूर्व योजना तो बनती ही है। पर यहाँ न कोई योजना थी, न किसी जिम्मेदार कार्यकर्त्ता की छाया।

खैर, नौ बजे के लगभग हम माइक पर जा पहुँचे—"देवियो और सज्जनो, हर वर्ष की भाँति फागुन मेले के अवसर पर हम सांस्कृतिक संध्या का आयोजन करने जा रहे हैं। जो भी उत्साही कलाकार इसमें भाग लेकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करना चाहें हम उनका स्वागत करेंगे···"

इतना कहकर हम अध्यक्ष जी के पास आ बैठ। लम्बे समय तक किसी भी नाम का प्रस्ताव नहीं आया। कुछ ही पल बाद कुछ लोग लक्ष्मण जी भाई से सम्पर्क कर बैठे। वे हमारी ओर मुड़े—"ऐसा है जी, अब हमें कार्यक्रम प्रारम्भ कर देना चाहिए।"

"यह तो कैसे हो सकता है ? कोई भाग लेने वाला व्यक्ति भी तो दिखाई दे।" हमने कहा।

"ओ हो, तो आप ही कुछ-न-कुछ शुरू कर दीजिए। कोई कविता या गजल या···फिर तो देखना, अपने आप चले आयेंगे कलाकार और कलाकारों के शागिर्द।" उनकी बात में आत्मविश्वास की झलक थी। मगर हमने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। हमने कहा—"बंधुवर, ऐसा नहीं होता है। हम हैं संचालक और हम ही सबसे पहले अपने आपको प्रस्तुत कर दें तो···"

"तो फिर ऐसा करते हैं···आप कुछ रुकिए···" कहते हुए वे मंच से उतर

गये और महिलाओं की भीड़ में से तीन-चार लड़कियों को बुला लाये। बाजारू शैली में बोले—"तुम्हारे स्कूल में कौन-सी प्रार्थना होती है, छोकरियों!"

"जयति जय-जय मां सरस्वती···" एक ने सकुचाते हुए उत्तर दिया।

"लो साहब, इनसे प्रार्थना करवाकर कार्यक्रम शुरू कर दीजिए अब।"

हमने मन-ही-मन माथा ठोक लिया—"यह अध्यक्ष है या भैंसों का चरवाहा? कम्बख्त कहीं का!"

खैर, हम फिर माइक पर पहुंचे—"हाँ तो महानुभावो, आज का कार्यक्रम सरस्वती वंदना से प्रारम्भ होने जा रहा है। लीजिए आपके सामने प्रस्तुत है होनहार बालिकाओं के समवेत स्वरों में···"

भीड़ में दबे बैठे नासमझ बच्चों ने तालियां बजाकर कार्यक्रम का स्वागत कर दिया। उधर वंदना प्रारम्भ हुई, इधर एक-दो नामों की पर्चियाँ हमारे पास आ पहुँची। कार्यक्रम धीमी गति के समाचार की तरह आगे बढ़ने लगा। अध्यक्ष जी हमारे कान में फुसफुसाये—"मैंने कहा था न, यहां तो ऐसे ही चलता है।"

हम सौजन्यवश मुस्करा दिये।

ज्यों-ज्यों कार्यक्रम ने गति पकड़ी, सूची में स्वयं सिद्ध कलाकारों की नामावली भी बढ़ने लगी। कोई एकल गीत देना चाहता था, कोई बाँसुरीवादन करना चाहता था। किसी के हाथ तबला वादन के लिए फड़क रहे थे, किसी के पाँव कत्थक या घूमर के लिए थिरक रहे थे। एक व्यक्ति कुत्ते-बिल्ली की बोलियाँ बोलना चाहता था तो दूसरा नेताओं की झरपट का अभिनय करना चाहता था।

देखते-देखते सांस्कृतिक संध्या जवानी की सीढ़ियाँ चढ़कर सांस्कृतिक निशा में बदल गई। हम खुश थे और हमसे भी ज्यादा खुश थे युवा सचिव जो किसी कन्या को इक्कीस रुपये इनाम देने और किसी लड़के को दूध पिलाने की घोषणा करवाते थे। अन्य भावुक श्रोता भी दिल खोलकर अपना उत्साह प्रकट कर रहे थे।

बस फिर क्या था! हमारे पास पर्चियों की बाढ़ आ गई। जेबों के आकार छोटे पड़ने लगे। कार्यक्रम सूची का पृष्ठ उलटना पड़ा। अब तो आलम यह था कि ज्यों-ज्यों पर्चियाँ आतीं हमारा मानसिक तनाव बढ़ता जाता। पर्चियाँ भी आयीं तो तरह-तरह की। किस-किस की बात करें! हम ठहरे धार्मिक प्रवृत्ति के। अतः लीजिए, कुछ नमूने पेश कर अपना धर्म निभा रहे हैं।

पहली पर्ची—"कविकुल शिरोमणि लफंगाजी चंद पंक्तियां पेश करने को सहमत हो गये हैं। सूची में नाम बढ़ालें।"

दूसरी पर्ची—"कौओं की तरह कांव-कांव बन्द करवाइए।"

तीसरी पर्ची—"अध्यक्ष को नीचे उतारो। कुछ लोगों को आपत्ति है।"

चौथी पर्ची—"सचिव सावधान ! हमारा भी एक आइटम किसी भी हालत में होना चाहिए।"

पांचवीं पर्ची—"आप भी अपनी कविता सुनाकर हमें बोर मत कर दीजिएगा।"

छठी पर्ची—"जमाना खराब है। लड़कियों को मंच पर नचाते शर्म नहीं आती ?"

सातवीं पर्ची— "गप्पू के मोनोएक्टिंग पर दिलफेंक की ओर से पैंसठ पैसे इनाम।"

आठवीं पर्ची—"जनता की मांग पर चौधरी इकत्तर सिंह का भाषण करवाया जाय।"

...सच मानिए, हमारी हालत ऐसी हो गई जैसे किसी बकरी को पिंजरे में बन्द कर, बाहर कई खूंख्वार जानवर खड़े कर दिये गये हों। कहाँ तो मंच पर कोई नहीं था और अब यहाँ चढ़ने-उतरने वालों की होड़-सी लग गई थी। हम परेशान थे। अमीन सयानी और दिलीपदत्त के नाम हमारी खोपड़ी की स्लेट से कब के साफ हो चुके थे।

कार्यक्रम की कोई निश्चित रूप-रेखा और मर्यादा भी नहीं थी। इसलिए भीड़ में किस्म-किस्म की आवाजें रॉकेट की तरह छूटतीं और संचालक की हैसियत को चारों खाने चित्त कर देतीं। पर क्या किया जा सकता था ! भाई, युद्ध भूमि में से सिपाही का निकल भागना आसान है मगर मंच से संचालक का उतरना बड़ा मुश्किल है। कोई भी तो नहीं था जो ऐसे वक्त हमारी मदद करता। और तो और आयोजक, नाम धारी अध्यक्ष और सचिव भी नदारद थे। मौसम ठंडा था पर हमारे कपड़े ऐसे भीग चुके थे जैसे जून के महीने में दस किलोमीटर की पद यात्रा करके लौटे हों। सांस्कृतिक निशा बुढ़ापे की सांस लेने लगी थी किन्तु उसका दम निकलता तब न !

तभी पीछे की भीड़ में कोई चिल्लाया—"सांप-सांप-सांप।" सभी ऐसे उठ खड़े हुए जैसे कयामत आ गई हो। आदमी बच्चों को कंधों पर बिठाकर एक-दूसरे को लांघने लगे। औरतें लहंगे-पल्ले झाड़ती भागने लगीं और मनचले छोकरे तालियां पीट-पीटकर हंसते-खिलखिलाते रहे।

उधर भगदड़ मची हुई थी और इधर हम वक्त का रुख भाँपकर माइक पर ऊंची आवाज़ में उद्घोषणा कर रहे थे—"महानुभावो, रात काफी ढल चुकी है। आप में से भी अधिकांश लोग घर पहुंचने को उतावले हैं। अतः आप सभी के अमूल्य सहयोग के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए हम सांस्कृतिक संध्या समिति की ओर से आपको धन्यवाद देते हैं, और आशा करते हैं कि अगली

वार हम यहां इसी मेले पर और अधिक उत्साह से मिलेंगे।"

बस, भीड़ छंटने लगी। एम्प्लीफायर वन्द हो गया। जिन्होंने कार्यक्रम पेश किये उनके चेहरों पर मुस्कराहट थी। जिन्हें अवसर नहीं मिला वे हमें घूरते, गालियों के तोहफ़े भेंट करते हुए पास से गुजर रहे थे और हम थे कि हमारे चहेते अध्यक्ष और सचिव को झुंझलायी निगाहों से खोजते अपने घर की राह पर कदम-कदम बढ़ रहे थे। □

ट्यूशन कर बैठा

कुंदन सिंह सजल

अध्यापक और ट्यूशन का सम्बन्ध मधुमक्खी व शहद जैसा होता है। दूसरे अध्यापकों को ट्यूशन करते देखता तो मेरा मन भी ललचाकर रह जाता। कई बार जब सत्रान्त में साथी अध्यापक परस्पर अपनी ट्यूशन की आमद का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते तो मेरे मुंह से भी लार टपकने लगती। एक कहता, "यार, इस वार तो फसल (ट्यूशन की) कोई अच्छा परिणाम न दे सकी। केवल दो हजार ही इस सत्र में ट्यूशन के मार सका हूं।" दूसरा कहता "यार, मेरे तो दो छात्रों को पिछले वर्ष मिस्टर माथुर ने फेल कर दिया था इसलिए मुझे तो इस सत्र में ट्यूशन के लिए बहुत कम विद्यार्थी मिल सके। नतीजा यह हुआ कि सत्र की आमद चार-पांच हजार से घट कर केवल तीन हजार ही रह गई।"

इधर हमारी श्रीमतीजी पर भी यह सनक खूब सवार हो गई कि मुझे भी ट्यूशन करके कुछ ऊपरी कमाई करनी चाहिए। वे मुझे उलाहना देकर कहती, "एक शर्मा जी हैं जिनको वेतन तो आपके बराबर मिलता है किन्तु बड़े ठाठ से रहते हैं। कभी टेरालिन व टेरीकाट से कम कपड़ा नहीं पहनते। उनकी घरवाली के पास तीन-तीन, चार-चार सौ की दसों साड़ियां हैं और उनके बच्चे देखो जैसे किसी बड़े रईस के बच्चे हों। मेरा और बच्चों का हाल देखो। बच्चे ऐसे लगते हैं जैसे अभी किसी यतीमखाने से चले आ रहे हैं और मैं अच्छे कपड़ों के अभाव में मारे शर्म के बाहर भी नहीं निकलती, किसी के घर पर मिलने भी नहीं जाती। आपने तो खादी के कुर्ते-पाजामे में रूखी-सूखी खाकर यह जीवन पूरा कर दिया। इन बच्चों पर तो तरस खाओ। इनको क्या पता है कि संसार में कितने-कितने स्वादिष्ट भोजन तथा फैशनेबल कपड़े हैं।" एक दिन खीझकर मैंने श्रीमती से पूछा, "तो मुझे क्या करना चाहिए—चोरी ? डाका ? या···?" वे बीच में ही बोल उठी, "और लोग क्या चोरी करते हैं ? डाका डालते हैं ?

वे ट्यूशन करते हैं और ट्यूशन के बलबूते पर ऐश करते हैं। आपका पता है मि० वर्मा ने अपनी लड़की का विवाह एक आर० ए० एस० अधिकारी लड़के से किया है और दहेज में एक कार दी है। अगर उनके ट्यूशन की कमाई नहीं होती तो क्या वे कार दहेज में दे सकते थे? आपने ये व्यर्थ का लेखन का रोग पाल रखा है जिसमें अधिकतर तो रचनाएं खेद सहित लौट आती हैं। कभी-कभार किसी सम्पादक को दया आ जाती है तो वह रचना छाप देता है और बीस-तीस रुपये पारिश्रमिक के भिजवा देता है और आकाशवाणी वाले कभी रचना प्रसारित कर देते हैं, या आपको बुला लेते हैं तो पचास-साठ रुपये इनायत कर देते हैं। इस तरह वर्ष में आपको दो सौ-चार सौ की आमद ही हो पाती है जिसमें पचासों रुपये तो पोस्टेज का खर्चा हो जाता है। सोचिये, क्या मिलता है आपको इस धंधे से? मैं कहती हूं दस-बीस लड़कों की ट्यूशन कर लीजिए और आराम से रहिये। बड़ी लड़की भी अब तो विवाह की आयु की ओर बढ़ रही है और आपके पास हजार पांच-सौ रुपये भी नहीं हैं।"

इस तरह श्रीमतीजी दोनों जून भोजन के साथ-साथ ट्यूशन की बात भी परोसने लगी तो मुझे भी इस मसले पर गंभीरता से सोचने पर मजबूर होना पड़ा। एक दिन मध्यान्तर में मैंने अपने शिक्षक साथियों से कहा, "मित्रों, हम अपना सिद्धांत ताक में रखकर ट्यूशन करना चाहते हैं। हमें भी दो-चार विद्यार्थियों की ट्यूशन दिलाओ।"

दूसरे दिन एक सज्जन हमारे घर पर शाम को तशरीफ़ लाये। बातों-ही-बातों में ज्ञात हुआ कि वे सेना की बीस-पच्चीस कैण्टीनों के कन्ट्राक्टर हैं तथा उनके साहब-जादे सैकण्डरी स्कूल परीक्षा में तीन वर्ष से शीर्षासन लगाये हुए हैं। वे सज्जन अपने सुपुत्र का जीवन बनाने को बड़े चिंतित हैं। लिहाजा अपने लाडले का भविष्य हमारे हाथों में बताते हुए बोले, "आपको तीन सौ रुपया माहवार दूंगा, आप उसे दो घण्टा रोज मेरे घर पधार कर संभाला कीजिए। नियमित पढ़ाने से वह इस वर्ष अवश्य उत्तीर्ण हो जायेगा।" हमने मन में विचार किया, "घर आई लक्ष्मी को टालना ठीक नहीं। जब ऐसी मुर्गी हाथ लग रही है जो दस माह में तीन हजार रुपये के अंडे अकेली ही दे देगी। फिर अधिक लालच करना भी ठीक नहीं। एक विद्यार्थी को पढ़ाना तो कोई खास परेशानी वाली बात भी नहीं। सोच कर हमने उन सज्जन से हामी भर ली और दूसरे दिन से हम उनके द्वार पर नियमित उपस्थिति देने लगे।

हर माह हम अपनी ट्यूशन के रुपयों का तकाजा करते तो वे सज्जन कहते, "मास्टर जी, घबराओ मत, पाई-पाई चुकता कर दूंगा। मेरा कारोबार कई जगह है, महीने में चार-पांच दिन घर रह पाता हूं, बाकी बाहर रहना पड़ता है।" मैं वफ़ादार सेवक की भांति चुप रह कर उनके सुपुत्र को नियमित पढ़ाने

निरन्तर जाता रहा।

इस ट्यूशन से हमारी श्रीमती जी भी पर्याप्त खुश नज़र आती थी। वे अब हमारी अधिक सार-संभाल करने लगी थी। धीरे-धीरे वह समय भी आया कि वे साहबजादे परीक्षा भी दे आये। पूछने पर उन्होंने बताया कि पेपर सब ठीक-ठाक हो गये हैं। उन सज्जन के अब दर्शन भी दुर्लभ हो गये। एक दिन अचानक उन्हें बाजार में देखा तो दबी जबान ट्यूशन के पैसों की मांग की। वे तपाक से बोले, "परसों घर आ जाइये और अपना हिसाब चुकता कर लीजियेगा।"

बद-किस्मती हमारी कि दूसरे दिन सैकण्डरी परीक्षा का परिणाम घोषित हो गया और वे हमारे शिष्य चारों खाने चित्त आ गये परीक्षा में। इसके अगले दिन जब हम उन सज्जन के ड्राइंग रूम में उनकी लम्बी प्रतीक्षा कर चुके तो वे तशरीफ लाये और बोले, "मास्टर जी, रिजल्ट तो आपने देख ही लिया होगा। लड़का फिर फेल हो गया है। इसका मतलब है कि आपने भी मेरे साथ धोखा किया। उसे अच्छी तरह नहीं पढ़ाया और ट्यूशन का मतलब तो गारण्टी होता है, ट्यूशन करने का मतलब था कि आपने लड़के को पास कराने की गारण्टी ली थी। अब जब कि लड़का फेल हो गया है, मैं आपको एक पैसा भी नहीं दूंगा।" यह कहकर वे सज्जन अन्दर चले गये अपने रनिवास में। और हम हारे जुआरी की भांति मुंह लटकाये घर आकर श्रीमती जी से तबियत खराब होने का बहाना करके चादर तान कर सो गये।

अब सुनिये दूसरा हादसा। मेरा स्थानान्तरण एक कस्बे की सैकण्डरी स्कूल में हो गया था। एक दिन तहसीलदार साहब का चपरासी मेरे घर पर आया और बोला, "आपको तहसीलदार साहब ने याद किया है।" सुनकर सुखद आश्चर्य हुआ। संध्या को हाजिर होने का कहकर चपरासी को विदा किया। शाम को जब मैं तहसीलदार के सम्मुख हाजिर हुआ तो वे फरमाने लगे, "सजल साहब, आपकी तारीफ़ सुन चुका हूं। आप जितने अच्छे शायर हैं उतने ही बढ़िया अध्यापक हैं। मेरे दो लड़के हैं, एक सैकन्डरी का स्टूडेंट हैं दूसरा हायर सैकण्डरी का। आप दोनों को ट्यूशन पढ़ाया कीजिये, आप जो मेहनताना लेंगे, वही दूंगा।" उनके आतिथ्य सत्कार ने मुझे ऐसा सम्मोहित किया कि कटु अनुभव के बावजूद भी मैंने ट्यूशन के लिए हामी भर ली।

अब मैं रोज साहब के घर उपस्थिति देने लगा। किसी दिन जब तहसीलदार साहब घर मिल जाते (अक्सर तो वे दौरे पर ही तशरीफ ले जाते थे) तो ऐसी खातिर करते कि श्रद्धा से उनके सामने मैं मस्तक नत हो जाता और वे मुझे घंटों अपने पास बिठाकर मेरी प्रशंसा के पुल बांधते। मैं सांसारिक व्यवहार कुशलता से शून्य उनके इस आतिथ्य में छुपे रहस्य को समझ न सका।

अचानक सत्र के मध्य मेरा प्रमोशन हो गया और फरवरी में मुझे वह स्थान छोड़ना पड़ा। दो-तीन दिन की प्रतीक्षा के पश्चात् एक दिन तहसीलदार साहब घर मिल गये। उनसे मैंने अपने प्रमोशन की चर्चा की। उन्होंने मुझे तहेदिल से मुबारकवाद दी। जब मैंने ट्यूशन का हिसाब करने की विनती की तो आप हँसे और बोले, "भाई सजल, आपका गांव इसी तहसील में है। आपका जमीन सम्बन्धी कोई केस हो तो मुझसे मिल लेना। आपके पास जमीन नहीं हो तो मैं जमीन अलाट करवा दूंगा।" मैंने निवेदन किया, "जी, मेरा न तो कोई केस है और न जमीन की चाहत। मुझे तो ट्यूशन के पैसे चाहिएं, आप वे ही बख्श दीजिए।" वे बोले, "आपका नहीं तो आपके रिश्तेदारों का कोई केस होगा। मैं हर तरह से आपकी मदद को तैयार हूं, किसी भी समय मुझ से मिल लेना।"

इधर तो मुझे प्रमोशन पर जाने की शीघ्रता और उधर साहब का पैसा नहीं देने का अपरिवर्तित निर्णय। नतीजा यह हुआ कि मैं खाली हाथ उनके घर से लौट आया और श्रीमती जी पर बरस पड़ा कि क्यूं उन्होंने मेरा लेखन जैसा पावन धंधा छुड़वा कर ट्यूशन जैसा घृणित धंधा करने को प्रोत्साहित किया और मेरी शामत बुलाई। इसके बाद मैंने जीवन में फिर कभी भी ट्यूशन न करने की शपथ ले ली। □

क़िस्सा पर्व मनाने का

मुख़्तार टोंकी

वह कार्तिक मास की एक सुहानी सुबह थी। हम 'संडेमूड' में घर की एकमात्र आराम-कुर्सी बरामदे में डाले पवन-सेवन का पुनीत कार्य कर रहे थे और साथ में अख़बार चाटने का अर्द्ध-साहित्यिक कार्य भी हो रहा था। इतने में हमें बादल गरजने की आकाशवाणी सुनाई दी। हम ने अख़बार के झरोखे से देखा और हमारे देवता अपनी देवियों सहित कूच कर गये। हमारी क़ानूनी और धार्मिक पत्नी बड़ी क़ातिल अर्थात् डिप्लोमेटिक मुस्कराहट के साथ हमारे सम्मुख खड़ी थीं। बिना पूर्व सूचना के चूल्हा-चक्की छोड़ कर श्रीमती जी का इस प्रकार चले आना ख़तरे से ख़ाली नहीं था। इससे पहले कि प्रतिरक्षा के तौर पर हम कुछ बोलते, श्रीमती महोदया ने विरोधी दल के नेताओं की तरह धारा-प्रवाह भाषण आरम्भ कर दिया और हम भौंचक्के होकर उनका श्रीमुख ताकने लगे। उनकी भावभंगिमा, लहजे के उतार-चढ़ाव और शब्दों के चयन से प्रतीत होता था कि कोई उच्च कोटि का वक्ता अविराम बोल रहा हो। हमने बीच में मार्ग अवरुद्ध करने की भरपूर कोशिश की किन्तु सफलत्ता प्राप्त न हो सकी। उनके तर्क-वितर्क इतने सजीव एवं शानदार थे कि हमारे मुंह पर 'हरीसन' के ताले लग गये। उनकी वक्तृत्व शक्ति' देख कर हम ने एक ओर तो आश्चर्य से दांतों तले अंगुली दबा ली और दूसरी ओर मन में गर्व की धारा फूट रही थी। आश्चर्य इसलिये हुआ कि हम अभी तक इससे अनभिज्ञ थे। निःसन्देह उनका भाषण इतना ओजस्वी एवं तर्क पूर्ण था कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय महिला वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार नहीं तो 'कांस्य पदक' तो प्राप्त कर सकती थीं। गर्व की भावना इस कारण उत्पन्न हुई कि हम ऐसी प्रकाण्ड एवं विदुषी महिला के रजिस्टर्ड पति हैं।

विषय था—"दीपावली आगमन" और वह दीपावली से होने वाले लाभों एवं उपयोगिता पर अपने सार-गर्भित विचार प्रस्तुत कर रही थीं। पाठकों को

विदित हो कि दीपावली का पर्व "सपत्नीक" मनाने का यह हमारा प्रथम अवसर था और हम दोनों एक प्रकार से अभी तक 'हनीमून' मनाने में व्यस्त थे। अन्ततोगत्वा हमने हमारा सम्पूर्ण साहस बटोर कर कहा—"टिल्लू की अम्मां! (ज्ञातव्य है कि परिवार नियोजन के विचार से अभी हमारे घर में टिल्लू का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था) चिन्ता क्यों करती हो! दीपावली हमारे लिये तुम्हारी तरह नयी नहीं है। हम प्रतिवर्ष उससे भिड़न्त करते आये हैं और अब भी पूर्ववत् हम उसे यथासमय मना लेंगे।"

"पूर्ववत् हम उसे यथासमय मना लेंगे।" श्रीमती जी ने हमारी नक़ल उतार कर मति पर प्रहार किया—"किन्तु उसके लिये पूर्व-तैयारी भी तो होनी चाहिये।"

"अधिक चतुराई दिखाने की आवश्यकता नहीं। यह भी कोई 15 अगस्त और 26 जनवरी है जिसके लिये पूर्वाभ्यास और पूर्व-तैयारी करने की आवश्यकता है।"

हमें वास्तव में हमारी शाला के शारीरिक शिक्षक याद आ गये थे जो एक मास पूर्व ही से तैयारी और रिहर्सल के बहाने हमें अध्यापन कार्य से वंचित कर देते थे।

"देखिये! मैं सौजन्यपूर्ण वातावरण में बातचीत कर रही हूं और आप व्यर्थ में नाराज़ होने की एक्टिंग कर रहे हैं। आप साफ़ कह दीजिये कि आप को दिवाली मनाने के लिये मुझे सहयोग देना है अथवा नहीं?" श्रीमती जी ने 'यस' और 'नो' का प्रश्न हमारे सामने रख दिया था। हमने किसी हारे हुए जुआरी की तरह उनके चन्द्रमा के समान चमकते हुए चेहरे की ओर देखा और भाव-विभोर होकर बोले—"देवी जी! आप से 'नान कोप्रेशन' करके मुझे इस घर को नरकतुल्य नहीं बनाना है। फ़रमाइये! क्या आज्ञा है? यह आप का चरणदास आपके चरणों में उपस्थित है।"

"मर्दों की यही बातें मुझे नापसन्द हैं कि वे झट चापलूसी पर उतर आते हैं। मेरा प्रयोजन केवल इतना ही है कि आप दीपावली को ढंग से मनाने में मेरी सहायता करें।"

श्रीमती जी ने अन्तिम शब्दों को कुछ इस प्रकार कहा कि हम अपने को बेढ़ंगा अनुभव कर रहे थे। फिर भी हमने बनावटी विनम्रता से कहा—"आप शत-प्रतिशत सही फ़रमाती हैं। आप त्यौहारों को इस ढंग से मनाइये कि इस दीपावली पर हमारा दिवाला निकलने में कोई कसर न रहे।"

"फिर वही मुर्गे की एक टांग! मैं आप से दिवाली की बात कर रही हूं आप 'ऑलरेडी बैंकरप्ट' होने के बावजूद भी दिवाले की बात पर उतर आये हैं।"

"चींटी को पंसेरी से मत मारो। यह तो हमीं जानते हैं कि नत्थू हलवाई को कितने किलो मिठाई का आर्डर देना होगा, कितने खिलौने लाने होंगे, कितने चित्र और तस्वीरें खरीदनी होंगी, कितने दीपक जलाने होंगे और कितनी साड़ियों का मोल-भाव करना होगा और सुनिये महोदया ! यह सब कुछ मुझ मध्यम श्रेणी के कर्मचारी को जीवित मार देने के लिए काफ़ी है।" हमने उद्‌गार प्रस्तुत करने में तनिक संकोच नहीं किया और फिर प्यार किया तो डरना क्या ?"

श्रीमती जी ने उपहास की दृष्टि से हमारी ओर देखा और फिर बड़े तीक्ष्ण स्वर में बोलीं—"मैं तो समझती थी कि आप पढ़े-लिखे हैं और दीपावली के महत्व को भली प्रकार समझते होंगे किन्तु आपकी बातों से प्रतीत होता है कि आप दीपावली की 'क-ख' से भी परिचित नहीं हैं।"

यह सुनकर हम भीतर से तिलमिला उठे। यह हमारा खुला अपमान था कि हम दिवाली के अर्थ से परिचित नहीं हैं और इसके मनाने का कारण भी हमें ज्ञात नहीं है। प्रतिशोध की भावना मन में दबाकर हमने खिल्ली उड़ाने वाले अन्दाज में झल्लाकर कहा—"टिल्लू की अम्मां तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि तुम्हारा पति राजकीय उच्च विद्यालय में एक प्रतिष्ठित अध्यापक है और वह लगभग 12 वर्षों से विद्यार्थियों के आगे दीपावली मनाने का कारण तथा लाभ-हानियों का बखान करता आया है। तुम कहो तो भैंस के आगे भी बीन बजाऊं ?" प्रश्न के साथ हम भी प्रश्न-वाचक चिह्न बन गये। पत्नी जी अटूट स्वर में बोलीं—"शुरू हो जाओ ! देर किस बात की है ? मैं भी तो देखूं ! आप हमारी भावी भारतीय सन्तति को क्या बुरा-भला पढ़ा कर उसका सत्यानाश कर रहे हैं।"

हमने खंखार कर गला साफ किया और फिर शुद्ध अध्यापकीय स्वर में कहना शुरू किया—"प्रिय पत्नी ! यह तो तुम्हें मालूम है कि भारत त्यौहारों का देश है और यहां प्रतिमास कोई-न-कोई त्यौहार मनाया जाता है। हिन्दुओं के मुख्य त्यौहारों में रक्षाबन्धन, दशहरा, दिवाली और होली बड़ी शान से मनाये जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि रक्षाबन्धन ब्राह्मणों का, दशहरा राजपूतों का, दीपावली वैश्यों का और होली शूद्रों का त्यौहार है किन्तु यहां अलग-अलग त्यौहार मनाने की कोई समस्या नहीं है क्योंकि त्यौहारों को सभी जनता-जनार्दन मिल-जुल कर मनाती है। इन त्यौहारों में दीपावली बड़ा महत्वपूर्ण त्यौहार है। इसके मनाने का आदि कारण यह है कि इस दिन श्री रामचन्द्रजी रावण और अन्य राक्षसों का अन्त करके, अपने चौदह वर्ष का वनवास पूर्ण करके अयोध्या वापिस पधारे थे। अतः लोगों ने इस हर्षोल्लास के अवसर पर अपने घरों को प्रकाशमान किया था और खुशी प्रकट करने के लिये मिठाइयां

आदि भी बांटी थीं। तभी से यह परम्परा चली आ रही है…"

हम ने फुल-स्टाप लगाकर प्यारवश पत्नी को देखा। वह तुरन्त बोलीं—"धन्य है आपकी बुद्धि और ज्ञान को…आप ने आखिर औरों की तरह इसके डांडे भी धार्मिकता से जोड़ दिये। मैं आप का कथन ब्रह्म-वाक्य समझ कर स्वीकार कर लेती हूं कि दीपावली का श्रीगणेश रामचंद्र जी की रावण पर विजय और अयोध्या वापिसी से होता है किन्तु जैन मतावलम्वी इसी त्यौहार को महावीर स्वामी की यादगार में मनाते हैं और ऐसा मानते हैं कि इस दिन उन्होंने अन्तिम श्वांस ली थी और फिर आर्य समाजी भी अपना भिन्न दृष्टि-कोण रखते हैं। उनका कहना है कि इस दिन स्वामी दयानन्द ने अपने मिशन की पूर्ति करके 'हीरोइक डैथ' प्राप्त की थी, इसी कारण से दीपावली को हर्षोल्लास से मनाते हैं।"

हमारी श्रीमती की विद्वत्तापूर्ण बातों से हमारे ज्ञान चक्षु 'इण्डिया गेट' की तरह खुल गये। यह वास्तव में विचारणीय और हमारे लिये दयनीय स्थिति थी क्योंकि हमें खोखले ज्ञान की पोल खुलती नज़र आ रही थी। हमने करुणा-मय स्वर में पत्नी को सम्बोधित किया—"हे मेरी लोपा-मुद्रा, विश्ववारा, मैत्रैयी, गार्गी और इत्यादि इत्यादि! हम ने तेरे ज्ञान का लोहा, बल्कि फौलाद मान लिया। अब तू ही इस रहस्य का उद्घाटन कर दे और अपने सेवक पर वह विधि प्रकट कर दे कि हमें दिवाली किस प्रकार मनानी है।'

उदार हृदय वाली पत्नी ने हमारे ऊपर और अपनी योग्यता प्रदर्शित की और आंग्ल भाषा में कहा—"दिवाली मीन्स डिस इन्फेक्शन" (Dewati means disinfection)। हमने तोते की तरह वापिस इन्हीं शब्दों को दोह-राया…"दिवाली मीन्स डिस इन्फेक्शन"। पत्नी पुनः बोलीं—"इट इज सेले-ब्रेटेड एट दी क्लोज़ ऑफ रेनी सीज़न।" हमें यह विदेशी भाषा आती तो है किन्तु सही उच्चारण करने में हमने हमेशा कठिनाई का अनुभव किया है। अतः हमने ज्ञान की खान, प्रिय प्राण, अर्धांगिनी से कहा—"कृपया मातृ भाषा में अपने विचार प्रकट करके इस पत्नीव्रत पति को अनुगृहीत करें।"

हमारी प्रार्थना व्यर्थ नहीं गयी और तुरन्त ग्रान्ट कर ली गयी। बड़े मधुर स्वर में कहा गया—"देखिये! अभी मैंने आपको कहा कि दीपावली मीन्स डिस इन्फेक्शन अर्थात् दिवाली घर के डिस इन्फेक्शन और स्वच्छता का विशेष दिवस है जो वर्षा ऋतु के अन्त में हिन्दू पंचाग के अनुसार कार्तिक मास के 15 वें दिन सम्पन्न होता है। वर्षा ऋतु में मकान गन्दे और गीले हो जाते हैं और चारों ओर गन्दगी फैल जाती है। अतः यह आवश्यक है कि मकान और वातावरण को स्वच्छ किया जाये। मकानों और रास्तों को "कृमिरहित" करने का नाम ही दिवाली है। 'रूप-चौदस' को सब घर लीप-पोत कर स्वच्छ कर

दिया जाता है और कूड़ा-करकट बाहर फेंकने के पश्चात् 'डिस इन्फेक्शन' के लिये बाहर यम का दीपक जलाया जाता है। लोग स्वयं भी नहा-धो कर साफ सुथरे हो जाते हैं। स्त्रियां भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र वनाकर और जगह-जगह दीपक जलाकर डिस इन्फेक्शन का कार्य करती हैं। यह छोटी दिवाली है। रूप-चौदस के दूसरे दिन वड़ी दिवाली होती है। इस दिन पहले दिन की तुलना में अधिक दीपक जलाये जाते हैं। घर की मोरी, शौचालय और घड़ौंची इत्यादि पर दीपक जलाने का प्रयोजन यही है कि इन्हें स्वच्छ और डिस इनफेक्ट (Dis-infect) किया जाये। सारांश में मैं यह कह सकती हूं कि यह 'सफाई-सुथराई का त्यौहार'। हमें अपनी पत्नी की "डिसकवरी ऑफ डिस इन्फेक्शन" से हुई थी। "सोचती हूं कि अव तो आपके मस्तिष्क की भी धुलाई हो गई होगी।"

पत्नी का यह सटीक प्रवचन 'ब्रेन-वाशिंग' की एक नवीन प्रणाली थी। हमारे छोटे-से दिमाग में उथल-पुथल मच गयी। हमने इतना पढ़-लिख कर वास्तक में घास खोदी थी कि दिवाली की इतनी-सी वारीकी को किसी ग्रन्थ से प्राप्त नहीं कर सके। हम महात्मा बुद्ध की तरह थे जिन्हें 'बोधिसत्व' मिल गया था। कोलम्बस को अमेरिका की खोज करके इतने सन्तोष एवं सुख की प्राप्ति नहीं हुई होगी, जितनी हमें अपनी पत्नी की डिसकवरी ऑफ डिस इन्फ़ेक्शन से हुई थी। इस समय पत्नी महोदया भी महत्वपूर्ण उपलब्धि प्रतीत हो रही थी। हमें मौन देखकर उन्होंने फिर सम्वोधित करने का गौरव प्राप्त किया।

"हां! तो पतिदेव, आप समझ गये होंगे कि दीपावली आगमन से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप निश्चिन्त रहें। मैं आप से नये कपड़ों की मांग नहीं करूंगी। नत्थू हलवाई को मिठाई का ऑर्डर देने की आवश्यकता नहीं है, वह मैं स्वयं घर में तैयार कर लूंगी। आतिशबाज़ी स्वयं मेरी दृष्टि में वाहियात चीज़ है और रही खिलौनों आदि की बात, तो अभी इनसे खेलने वाला ही उत्पन्न नहीं हुआ है, फिर सोच कैसा है? हम दीपावली बहुत शान से और सादे ढंग से मनायेंगे।" हमने इस 'विरोधाभास' पर पत्नी की ओर देखा तो वह मन्द-मन्द मुस्कराईं और इस प्रकार वोलीं :

"आप को केवल इतना कष्ट दूंगी कि मकान को 'डिस इन्फेक्ट' करने और वाइट्-वाश हेतु एक तो कुछ किलो कलई लानी है और फिर एक दिन की कैज्यु-अल लीव' लेनी है।"

"मेरे आकस्मिक अवकाश की हत्या क्यों कर रही हो? कलई की आव-श्यकता है तो छात्रों द्वारा मंगवा दूंगा। वैसे भी किराये के मकान में वाइट्-वाश कराने का औचित्य मेरी समझ में नहीं आता।"

हम इस समय किसी दूसरे सोच में डूबे हुए थे। पत्नी जी भड़क उठीं और लाल-पीली होकर बोलीं—"बस ! अपने मुंह को बन्द ही रखो। कहे देती हूं कि बाजार से तुम्हें कलई लानी है और स्कूल से छुट्टी भी लेनी पड़ेगी। आखिर समय-समय पर मेरे कारण भी तो सी० एल० की हत्या करते रहते हो। कुछ तो शर्म करो। घर किराये का है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हम गन्दा तो कर दें और उसकी सफाई-सुथराई न करें। कान खोल कर सुन लो। घर का सब सामान तुम्हें स्वयं बाहर निकाल कर रखना है और मेरे निर्देशानुसार सब मकान की पुताई भी करनी है। यह भी याद रखना कि यह काम दो दिन के भीतर होना है। अन्यथा मुझ से बुरा कोई न होगा।"

पत्नी का यह अनूप रूप देख कर हमें ग्लानि हुई और हमने भीगी बिल्ली बन कहा—"हम अपने मूर्खतापूर्ण वक्तव्य पर अत्यधिक लज्जित हैं और विश्वास दिलाते हैं कि आपके आदेशों और समस्त निर्देशों का वर्ड-बाई-वर्ड पालन किया जायेगा।"

जिज्ञासु और बुद्धिमान पाठकगण आगे की घटनाओं का स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। अब जब भी कभी दिवाली आयेगी हम तो यही कहेंगे :

"डिस इन्फ़ेक्शन डे जिन्दाबाद ! हमारी पत्नी पाइन्दा बाद !!"

□

समरथ को नहीं दोष

श्यास मनोहर व्यास

रामचरित मानस की उपर्युक्त चौपाई कितनी सटीक व सही है, इसके प्रमाण में एक घटना प्रस्तुत कर रहा हूं।

एक बार हमारे विद्यालय में हिन्दी परिषद् की ओर से 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' जयन्ति मनाई गई ! मीटिंग की अध्यक्षता करने के लिये कस्बे के ही एक राजनेता को बुलाया गया। इससे हमें दो लाभ थे एक विद्यालय के लिये अनुदान दिलाने हेतु उनकी अभिशंसा व दूसरा शिक्षकों पर उनकी कृपा-दृष्टि बनी रहे।

वे आये और सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। जब उन्हें 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' पर बोलने को कहा गया तो उन्होंने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र पर धारा प्रवाह बोलना शुरू किया। उन्होंने एक बहु प्रचलित दोहे को गाकर भाषण देना शुरू किया।

चन्द्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत् व्यवहार।
पै दृढ़ व्रत हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार॥

छात्र और अभ्यागत यह सुनकर दंग रह गये कि नेताजी ने 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की जगह 'राजा हरिश्चन्द्र' का गुणगान प्रारम्भ कर दिया।

बात नहीं बढ़े इसलिये मैंने भाषण के बीच में नम्रतापूर्वक उन्हें टोकते हुए निवेदन किया : "श्रीमान् यह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर मीटिंग आयोजित की गई है।"

मेरी बात अनसुनी कर वे झल्ला पड़े : "मैं भारत के हरिश्चन्द्र की ही बात कर रहा हूं। आप चुप रहिये।"

मैं और मेरे साथी मन मार कर बैठ गये !

उनके प्रवचन के पश्चात् जब अन्य वक्ताओं ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का

जीवन परिचय देकर उनकी साहित्यिक सेवाओं का वर्णन किया तो उन्हें अपनी गलती का भान हो आया। अब उनका चेहरा देखने लायक था। श्रोताओं में और अधिक उपहास के पात्र न बनें इसलिए उन्होंने सिर दर्द का बहाना किया और मीटिंग में बीच में से ही चले गये।

इन राजनेता महोदय ने 'समरथ को नहीं दोष गुसांई' चौपाई को बिल्कुल सार्थक दिया।

एक अन्य घटना है। एक मंत्री महोदय को अस्पताल में 'ऑपरेशन थियेटर' का उद्घाटन करने के लिये बुलाया गया!

अर्द्ध-शिक्षित मंत्री महोदय ने फरमाया :

"देखिये, हमारी सरकार अस्पताल के कर्मचारियों और रोगियों के मनोरंजन का कितना ध्यान रखती है जिसने ऑपरेशन कक्ष में भी थियेटर बनाया है!"

इसी प्रकार एक विधायक ने एक बार अस्पताल में बने 'लेबर-रूम' का अर्थ मजदूरों का कमरा बतलाया!

एक बार एक महाविद्यालय में विज्ञान के छात्रों ने प्रधानाचार्य महोदय के सामने मांग रखी कि उन्हें गणना के लिये परीक्षा में 'लाग टेबल' उपलब्ध कराई जाए, प्रधानाचार्य ने इसका अर्थ लम्बी मेज से लिया और अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा : "भाई, अभी तो हमारे पास ये ही छोटी टेबलें उपलब्ध हैं; अगले वर्ष लम्बी मंगवा लेंगे। अभी इन्हीं से काम चलाओ।" विज्ञान के छात्रों द्वारा 'लाग टेबल' का वास्तविक अर्थ बतलाने पर उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई!

पिछले वर्ष प्रदेश के एक लोकप्रिय भूतपूर्व मुख्यमंत्री का देहावसान हो गया! उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये शोकसभा आयोजित की गई! राज्य के एक भूतपूर्व मंत्री ने 'श्रद्धांजलि' शब्द को रट लिया और जब विनोबा भावे की जयन्ति मनाई तो उन्होंने अपने भाषण में जीवित विनोबाजी को भी 'श्रद्धांजलि' अर्पित कर दी। उन्होंने 'श्रद्धांजलि' शब्द को आदर सूचक शब्द के रूप में स्वीकार कर लिया!

सम्मोहन विद्या में प्रवीण व वाक्-पटुता में माहिर कुछ व्यक्ति अपने आपको 'भगवान्' घोषित कर निरीह जनता का मानसिक शोषण करते हैं। उनके कारनामें जब तक जनता के सामने नहीं आ जाते तब तक 'समरथ को नहीं दोष गुसांई' वाली कहावत चरितार्थ होती रहती है व श्रद्धालु भक्त जन उनके कारनामों को आंखें बन्द किये व कानों पर अंगुली लगाये देखते व सुनते रहते हैं! जब उनकी धूर्तता व पाखंड का भंडाफोड़ होता है तो जनता उन्हें

सबक सिखाती है।

जनता को दीर्घ काल तक मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। प्राचीन काल में राजा-महाराजाओं के अवगुणों को यह कह कर नजर-अन्दाज कर दिया जाता था कि 'समरथ को नहीं दोष गुसांई', पर अब लोकतंत्र के इस युग में तो इस चौपाई को इस प्रकार बदलना होगा—

"समरथ को भी सब दोष गुसांई।"

□

हमारी गरीब सम्पदा

जगदीश प्रसाद सैनी

हमारे यहां का गरीब उत्तम कोटि का होता है। वह खूब टिकाऊ होता है अतः पीढ़ियों तक गरीब बना रह सकता है। वह अत्यन्त मर्यादाशील होता है फलतः गरीबी की सीमा रेखा से ऊपर सिर उठाने का दुस्साहस कभी नहीं करता। मरणासन्न अवस्था में पहुंच चुकने पर भी वह वर्षों जिन्दा रह सकता है। वह सीधा-सादा, भोला-भाला, अशिक्षित, अंधविश्वासी और सहज-विश्वासी होता है अतः उसे आसानी से बहलाया-फुसलाया जा सकता है। वह रोटी की जगह भाषण खा सकता है, कपड़े की जगह आश्वासन लपेट सकता है और मकान की जगह आंकड़ों की छाया में वर्षों गुजर कर लेता है। परम-संतोषी होने के कारण वह कभी विद्रोह नहीं करता। वह उस पशु की तरह निरीह और स्वामिभक्त होता है जो पीठ पर कोड़े खाते रहने पर भी मालिक के जुए में जुता रहता है।

उत्तम कोटि के गरीब पैदा करने के लिए हमारे यहां पर्याप्त अनुकूल परिस्थितियां हैं। मंहगाई, बेकारी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार आदि अनेक चीजें हमारे यहां सहज उपलब्ध हैं जो गरीबी की खेती में खाद का काम देती हैं। ईमानदारी, सच्चाई, कर्तव्यपरायणता, परोपकार, दया, त्याग आदि बीमारियों से गरीबी की फसल को बचाने के लिए बड़े पैमाने पर कार्य किये जा रहे हैं। 'अधिक गरीब उपजाओ' आन्दोलन को सफल बनाने हेतु अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, भारत विश्व का सबसे बड़ा गरीब उत्पादक देश है अतः गरीब-उद्योग हमारा प्रमुख उद्योग है। यही उद्योग हमारे यहां के खाते-पीते लोगों के जीविकोपार्जन का एक मात्र स्रोत है। उत्तम कोटि के गरीब उत्पन्न करने एवं उत्पादित गरीबों का समुचित व्यावसायिक उपयोग करने सम्बन्धी तकनीक के विकास की दृष्टि से भी हमारा देश विश्व

में अग्रणी है। यह हमारे लिए कम गौरव की बात नहीं है कि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देश भी इस सम्बन्ध में हमारी मौलिक तकनीक का अध्ययन करने में जुटे हुए हैं। हमारे यहां गरीबों पर आधारित अनेक धंधों एवं व्यवसायों का विकास हुआ है जिनसे असंख्य लोगों को व्यवसाय के साधन सुलभ हो सके हैं। ऐसे कुछ धंधों एवं व्यवसायों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

राजनीति के धंधे में हमारे गरीब सर्वाधिक उययोगी सिद्ध हुए हैं। पर्याप्त मात्रा में उत्तम कोटि के गरीब उपलब्ध होने के कारण थोड़ समय में ही हमारे यहां राजनीति-व्यवसाय का आशातीत विकास हुआ है। राजनीति के धंधे में नेता-निर्माण का कार्य प्रमुख होता है। गरीब ही वह कच्चा माल है जिससे नेता निर्मित होते हैं। नेता निर्माण के उपरान्त गरीबों के कूड़े-करकट को गन्दगी के ढेर पर फेंक दिया जाता है। पांच साल में सड़-गल कर तैयार हो जाने पर अगली चुनावी फसल में इससे खाद का काम लिया जाता है। इस प्रकार राजनीति के धंधे में गरीबों का दोहरा उपयोग होता है—कच्चे माल के रूप में और कच्चे माल की अच्छी फसल हेतु खाद के रूप में। सचमुच हमारा गरीब 'आम के आम, गुठली के दाम' कहावत को सहज ही चरितार्थ कर दिखाता है।

राजनीति के धंधे में अच्छा-खासा 'मार्जिन' है। पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल सस्ते में उपलब्ध हो जाने के कारण लागत व्यय कम बैठता है और उसका कई गुना अधिक वसूल हो जाता है। पांच साल में एक बार 'कच्चा माल' जुटाने के लिए दस-पांच रोज दौड़-धूप करनी पड़ती है। जो कुछ रुपया-पैसा खर्च होता है, वह सिर्फ दलालों पर ही होता है, गरीब तो चन्द नकद भाषणों और ढेर सारे उधार आश्वासनों पर ही अपने आपको बेचने पर तैयार हो जाते हैं। 'कच्चे माल' की 'ढुलाई' पर परिवहन व्यय भी अधिक नहीं होता क्योंकि जगह-जगह 'क्रय केन्द्र' खोल दिये जाने के कारण अधिकांश गरीब पैदल चल कर खुद ही बिकने आ जाते हैं। नेता-निर्माण की प्रक्रिया भी अधिक लम्बी और जटिल नहीं है। कच्चे माल के संग्रह तथा उससे मतदान की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा नेता-निर्माण का कार्य एक-दो-दिन में ही पूरा हो जाता है जब कि एक बार निर्मित नेता पांच साल तक धंधा करता है।

राजनीति-व्यवसाय के लिए हमारे यहां के गरीब वरदान सिद्ध हुए हैं। संख्या में अधिक होने तथा सस्ते में उपलब्ध हो जाने के कारण भाड़े की भीड़ जुटाने में सुविधा रहती है। उनकी गरीबी और भुखमरी पर घड़ियाली आंसू बहाकर चुनाव-सभाओं में अच्छा रंग जमाया जा सकता है। भावुक एवं नासमझ होने के कारण उन्हें धर्म, जाति, क्षेत्र आदि के नाम पर भड़का कर सरलता से आपस में लड़ाया जा सकता है। राजनैतिक स्वार्थ उठाने के लिए

उनकी झोंपड़ियों में आग लगवाने, उनकी बहू-बेटियों के साथ बलात्कार करवाने तथा उनकी सामूहिक हत्या करवाने में आसानी रहती है। उनकी जान, माल और इज्जत की कोई कीमत तो होती नही अत: उन्हें राजनैतिक महत्वाकांक्षा की यज्ञाग्नि में जी भर होमा जा सकता है।

गरीबों पर आधारित व्यवसायों में सेवा-व्यवसाय का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 'जन-सेवा', 'लोक-सेवा' आदि में प्रयुक्त 'जन' और 'लोक' गरीब के ही पर्याय हैं। वैसे 'सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय' के अनुसार सेवा और सहायता सामर्थ्यवान की ही की जाती है और गरीब को कोई घास नहीं डालता पर यहां प्रश्न सेवा का नही, व्यवसाय का है, धंधे का है। धंधे की दुनिया में महत्व माल का नहीं लेवल का होता है। आप 'अमीर-सेवा', 'सम्पन्न-सेवा' 'सुखी-सेवा', 'शोषक-सेवा' आदि लेबल चिपकाइये, धंधा बिल्कुल नहीं चलेगा। इसके विपरीत 'गरीबों की सेवा' 'अभाव ग्रस्तों की सेवा', 'शोषित और पीड़ितों की सेवा' जैसे आकर्षक लेबलों के साथ बाजार में उतरिये, रातों-रात आपकी साख जम जायेगी।

हमारे यहां सेवा-व्यवसाय के दो रूप प्रचलित हैं—

(1) सरकारी तौर पर चलाया जाने वाला कार्य

(2) सेवा की प्राइवेट प्रेक्टिस।

पहले सरकारी सेवा व्यवसाय की बात करें। जिस प्रकार बड़े-बड़े लोगों को भगवान की भक्ति के लिए समय न मिलने के कारण वे पूजा-पाठ करने वाले नियुक्त कर देते हैं, वैसे ही बड़े-बड़े जन-सेवकों को भी कुर्सी की छीना-झपटी से फुर्सत नहीं मिलती अत: उन्हें गरीबों की सेवा के लिए सेवक नियुक्त करने पड़ते हैं। पूजा-पाठ के लिए नियुक्त पण्डे-पुरोहितों की आय का मुख्य स्रोत जैसे चढ़ावा होता है वैसे ही गरीबों की सेवा के लिए नियुक्त किये गये इन सरकारी सेवकों का धंधा भी सेवार्थी गरीबों द्वारा अर्पित भेंट-पूजा पर ही चलता है। इस भेंट-पूजा के अनुपात में उनको मिलने वाला वेतन तो ऊंट के मुंह में जीरे के बराबर ही होता है। जो जितना बड़ा सेवक होता है, उसके ठाठ उतने ही ऊंचे होते हैं, उसकी कार और बंगला उतना ही शानदार होता है। ये सेवक फील्ड में जाकर सेवा नहीं करते बल्कि बड़े-बड़े नगरों में इनके बैठने के लिए भव्य भवनों में सेवा-कार्यालय बने होते हैं। जिस किसी गरीब को सेवा करवानी होती है, वह खुद चलकर इनके पास पहुंचता है। हर सेवा-कार्यालय में अनेक सेवा-द्वार होते हैं और हर सेवा-द्वार पर कोई-न-कोई सेवक सेवा से लिए तत्पर मिलता है। सेवार्थी गरीब को हर द्वार पर अनिवार्यत: सेवा करवानी ही पड़ती है। नीचे वाले सेवक की सेवा ग्रहण किये बिना कोई भी ऊपर वाले सेवक के पास नहीं पहुंच सकता। एक सेवा-कार्यालय से सेवा

करवा चुकने के बाद अगले सेवा-कार्यालय में जाना पड़ता है। सरकारी स्तर पर चलायी जा रही यह सेवा-योजना व्यावसायिक दृष्टि से सफल रहने के साथ ही पर्याप्त गरीबोत्पादक भी सिद्ध हुई है।

सेवा की प्राइवेट प्रेक्टिस में लगे लोग फील्ड-वर्कर होते हैं। इनकी सेवा के अन्तर्गत गरीबों को आपस में लड़ा-भिड़ा कर कोर्ट-कचहरियों तक पहुंचाने का कार्य आता है। ये वस्तुत: सेवा-कार्यालयों में बैठे लोगों के लिए शिकार जुटाने का काम करते हैं। इनका धंधा 'नेतागिरी' भी कहलाता है क्योंकि अधिकांशत: छुटभैया नेता और फर्जी नेता ही सेवा के प्राइवेट धंध में लगे होते हैं। यह सेवा वस्तुत: राजनीति की रिहर्सल ही है। जिस प्रकार नौकरी में प्रवेश के लिए डिग्री की जरूरत होती है, उसी प्रकार राजनीति में प्रवेश पाने के लिए सेवा का डिप्लोमा होना जरूरी है। राजनीति में मार खाये हुए लोग भी सेवा के धंधे से ही पेट पालते हैं।

गरीबों पर आधारित व्यवसायों में 'गरीबी हटाओ' व्यवसाय का भी महत्वपूर्ण स्थान है। गरीव और गरीवी में वही सम्वन्ध है जो भेड़ और ऊन में है। जिस प्रकार ऊन का धंधा करने वाले भेड़ों की सलामती चाहते हैं, उसी प्रकार गरीवी हटाने का धंधा करने वाले भी गरीवों को वनाये रखना चाहते हैं। राहत व्यवसाय सीजनल और अनिश्चित है जवकि गरीवी हटाओ व्यवसाय स्थायी और निश्चित। इस व्यवसाय में लगे लोगों को राहत का धंधा करने वालों की तरह अनुकूल मौसम की संभावनाओं से आतंकित नहीं रहना पड़ता। गरीबों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराने वाले, सस्ती दरों पर ऋण सुलभ कराने वाले, उचित मूल्य प्राप्त कर रहे हैं। यह वह फसल है, जो खराब मौसम में अधिक हरी होती है। इस फसल को काट-काट कर लाखों लखपति और हजारों करोड़पति बन गये हैं।

वेरोजगारों के लिए (चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित) बीमारी के धंधे में स्वर्ण अवसरों की कमी नहीं है। इस धंधे के लिए न तो खास प्रशिक्षण की आवश्यकता है और न विशेष पूंजी की। दो-चार शीशियों में रंग मिला पानी व चूर्ण भर लो, दस-पांच तरह की गोलियां इकट्ठी कर लो और बैठ जाओ किसी नुक्कड़ की दूकान पर। फिर चाहे पानी के इन्जेक्शन लगाओ या लकड़ी का बुरादा चटाओ, आपका धंधा चलता रहेगा। रसगुल्ले खिलाने के लिए ग्राहक जुटाना मुश्किल है जबकि खड़िया से बनायी गोलियों को निगलने के लिए इतनी भीड़ जुट जाती है कि गर्दन उठाने की फुर्सत नहीं मिलती। नीम-हकीमों के लिए तो हमारे बीमार वरदान सिद्ध हुए हैं। ऐसे लोगों को हमारे यहां हर प्रकार की प्रायोगिक सुविधा सुलभ है। अन्य देशों में बेचारा ख्याति-

प्राप्त डाक्टर भी अपने द्वारा इजाद की गई किसी नयी दवा को पहले किसी

कुत्ते, बिल्ली या चूहे पर आजमाता है जबकि यहां किसी भी ऐरे-गैरे को अपने आक-धतूरा चूर्ण को आजमाने के लिए मरने वाले इन्सान उपलब्ध हैं। कोई भी त्रिपोलिया रिटर्न्ड सर्जन कहीं भी कैम्प लगा सकता है, उसे अपने प्रयोगों के लिए पर्याप्त संख्या में आंख फुड़वाने वाले मिल जाते हैं। ठीक भी है, जिनके पास गरीबों की कमी हो, वे करें कुत्ते-बिल्लियों पर प्रयोग। फिर वहां के कुत्ते, बिल्लियों और हमारे गरीबों में कोई मौलिक अन्तर भी तो नहीं है।

साहित्य व्यवसाय का मूलाधार भी गरीब ही है। मेरा यह दावा है कि संसार से गरीब उठ जायेगा तो साहित्यकार भी उठ जायेगा। पराई पीर में आंसू बहाने का धंधा करने वालों के लिए किसी पराये का पीड़ित होना जरूरी है। गरीब किसी का नहीं होता या गरीब का कोई नहीं होता, इसलिए वह पराया होता है। पीड़ा तो उसका अनिवार्य धर्म ही है। इस प्रकार साहित्य का धंधा करने वालों के लिए गरीब बड़ा उपयोगी प्राणी है। गरीब के अभावों को साहित्यिक भावों के सांचे में ढाल कर ऊंचे भावों पर बेचा जा सकता है।

तथाकथित जनवादी-क्रान्तिकारी साहित्यकार चाहते है कि क्रान्ति जितनी लेट आये उतनी ही ठीक है, क्योंकि क्रान्ति आ जाने पर तो क्रान्ति लाने का धंधा करने वाले बेरोजगार हो जायेंगे। अतः वे सुनियोजित ढंग से इस प्रयत्न में लगे हैं कि क्रान्ति सिर्फ किताबों में ही आये, समाज में नहीं; और भूले-भटके यदि समाज में भी आये तो वह उनकी मृत्यु के बाद आये ताकि जिन्दगी भर धंधा कर चुकने पर मृत्यु के बाद वे क्रान्ति के मसीहा भी कहला सकें।

अन्त में मैं कहना चाहूंगा कि 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की भांति ही गरीब अनन्त हैं, उन पर आधारित धंधे अनन्त हैं। और उन धंधों में लगे हुए एक-से एक बढ़ कर खिलाड़ी भी अनन्त हैं। उनके अगाध चरित में डुबकी लगा सकने में असमर्थ मेरी 'लघु मति' 'नेति-नेति' कह कर ही संतोष कर लेना चाहती है। हां, गरीबी के धंधे से कमा कर खाने वालों को यह नेक सलाह देना चाहूंगा कि वे नित्य प्रातः उठते ही इस मन्त्र का जाप अवश्य किया करें—

खुदा सलामत रखे गरीबों की गरीबी को,
जिसकी बदौलत हम गरीबी से दूर हैं।

□

डायरी के पृष्ठ

माल चन्द्र 'कमल'

अजमेर, 20 फरवरी 83

भाषा-शिक्षण की कार्यगोष्ठी के संदर्भ में आज यहां पहुंचा हूं। उदासी के कोहरे की पर्तों में कैद मन लौट रहा है स्मिता की ओर···गुजरे पलों के आल्हादकारी काल-खण्ड जाने क्यों कभी स्थिर नहीं लगते। स्थिर लगते हैं केवल—वेदना, कसक और टीस भरे क्षण। स्मृति के प्रोजेक्टर की रील न जाने क्यों हमेशा वेदनायुक्त क्षणों के चित्रों पर ही आकर स्थिर हो जाती है।

बार बार सोचता हूं—काश ! कभी ये आल्हादकारी काल-खंडों पर स्थिर होती !

अजमेर, 23 फरवरी

रात को तेज बारिश के कारण आंखें खुल गईं। बादलों से घटा-टोप आसमान। हवा के साथ तेज बारिश के छींटे।

गर्जना के मंद, मध्यम और भयानक स्वर। बिजली की कड़क। भारतीय वांग्मय में जाने कितने मानसिक भावों का प्रकटीकरण मेघों के माध्यम से हुआ है।

मेघ कितने सक्षम हैं, इसे समझा था कालिदास ने 'मेघदूत' में। सोच रहा हूँ—काव्य पढ़ने की अपेक्षा स्थितियों में अनुभूत करना अधिक सार्थक है।

अंधेरे में मेघदूत पढ़ रहा हूँ, सब समझ में आ रहा है। उस रोज कुछ समझ में नहीं आ रहा था। और अब एक-एक अक्षर समझ में आ रहा है—निर्वासित यक्ष का प्रिया के नाम मेघ द्वारा भेजा गया यह मार्मिक और करुण संदेश—

तां चावश्यं दिवस गणनात्परामेक पत्नी—
मव्या पन्नामवहित गति द्रंक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशा बन्धः कुसुम सदृशः प्रायशोह्यङ् गनानां
सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥

किशनगढ़, 24 फरवरी, 83

आज प्रेम प्रकाश जी के साथ किशनगढ़ आ गया हूँ। 'क्यों आ गया हूँ ? किस रिश्ते से आ गया हूँ ?'

मन पर इन दो वज़नी प्रश्नों का भार डाल देने के बाद भी मन है कि जरा भी प्रभावित नहीं होता। पूर्ववत् हलका है। विलकुल हवा की तरह।

हवा-सा उड़ता मन—सुगंध की ओर। हवा गंध लेकर उड़ती है और मन गंध की ओर। आत्मीयता की गंध।

कुछ रिश्ते अनाम होते हैं—आत्मीयता की गंध से भरपूर। जाने क्यों लोग रिश्तों को पारिभाषित करने और नाम देने पर इतना ज़ोर देते हैं।

पर मैंने महसूस किया है—निश्चित और पारिभाषित रिश्तों की अपेक्षा अपारिभाषित और अनाम रिश्ते ताजी और सौंधी मिट्टी-सी महक देते हैं, जो तन, मन, जीवन को एक सौंधी खुशबू से पाट देती है।

फिर भी जाने क्यों लोग ज़िद करते हैं रिश्तों को नाम देने की। मुझे मेरे प्रश्नों का उत्तर मिल गया है।

अजमेर, 25 फरवरी

चांदनी की चूनर ओढ़े आना सागर के सद्यःस्नात सौन्दर्य को देखने की उत्कट लालसा होने के बावजूद भी देख नहीं पाया तो दुःख हुआ।

किसी का संग-साथ पलों-क्षणों और सामान्य-से दृश्यों को कैसे इतना सजीव, प्राणवान और आकर्षक बना देता है।

एक चुम्बकीय धुरी से घिरा मन जिसमें सब दृश्य पास खिंचे लगते हैं।

ये दृश्य मन के पास बहुत पास आते-जाते हैं, इतने कि इनका सौन्दर्य देखा नहीं भोगा जाने लगता है।

पर आज स्मिता के पास न होने से करीब के दृश्य भी चुम्बकीय परिधि में नहीं आ रहे, बल्कि लगता है सब दूर, बहुत दूर सरकते चले जा रहे हैं।

सोचता हूं कहीं वह चुम्बक प्रेम तो नहीं।

पुष्कर, 26 फरवरी, 83

आस्था के मोती बीनने और श्रद्धा-सुमन अर्पित करने आते हैं लोग यहां।

पर मैं आया था यायावरी प्रवृति के वशीभूत होकर।

पुष्कर में विदेशियों की इस कदर भीड़ देखकर आश्चर्य चकित रह गया। कुछ वर्षों पूर्व यहां आया था तो इक्का-दुक्का विदेशी ही नज़र आता था।

जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही था—ये कौन-से मोती बीनने आते हैं यहां।

जिज्ञासा का समाधान किया अरुणजी ने, जो साथ ही थे—"दर असल ये मानसिक शान्ति की खोज में आते हैं।"

"यहां मानसिक शान्ति कैसे प्राप्त होती है ?"

"जीवन-यात्रा की दौड़-से थके-ऊबे इन लोगों के तन और मन को यहां की नैसर्गिक छटा में शान्ति मिलती है।" अरुण जी ने आगे कहा था—

"कोलाहल और तनाव भरी ज़िन्दगी से दूर अपने में खोये, रेतीले टीलों के बीच चांदनी रातों में झील के सौन्दर्य में डूबे ये विदेशी यहां अलमस्त बंजारों की तरह रहते हैं।"

मैं तुरन्त ही इस बात की सच्चाई परखने को तैयार हो गया। साक्षात्कार करने पर कुछ विदेशी जोड़े तो अलमस्त अपने में खोये और मस्ती में डूबे मिले। पर कुछ ऐसे भी थे जो चिन्तित, परेशान, खीझे और ऊबे हुए थे। यदि स्थान विशेष से ही मानसिक शान्ति मिलती हो तो यहां पर सभी शान्त और प्रसन्न-चित्त एवं उत्फुल्ल नज़र आने चाहिए थे। यकीनन मानसिक शान्ति किसी बाह्य उपकरण में निहित नहीं है, बल्कि वह तो अंतर में समाहित है।

पैसे से भी नहीं हटता

गोपाल प्रसाद मुद्गल

बस ने स्टैण्ड छोड़ा ही था। बस के सामने एक गधा अड़ गया। ड्राइवर ने होर्न पर होर्न दिए। गधा तो गधा ठहरा, क्यों हटने लगा। पटरी पर एक गांव का आदमी खड़ा था वह भी उसे देख रहा था। ड्राइवर ने उसकी ओर देखा और उस गधे को हटाने का संकेत किया।

पटरी पर खड़ा आदमी बोला, "भाई गधा मेरा नहीं है।" ड्राइवर बोला, "तेरा तो नहीं है किन्तु हटा दोगे तो क्या बिगड़ जाएगा।" आदमी ने उत्तर दिया, "भाई मुझे गधा हटाने के पैसे नहीं मिलते। फिर इस बस में ऐसे आदमी भी बैठें हैं जो पैसे लेकर भी गधे नहीं हटाते, फिर मैं बिना पैसे के गधे क्यों हटाऊं। आये दिन कचहरी, स्कूल, थाने, अस्पताल आदि में यही होता है। लोग पैसे लेकर भी गधे नहीं हटाते।"

फिर भी न जाने क्यों उसने गधा हटा दिया किन्तु उसका कहा हुआ वाक्य मेरे मस्तिष्क में गूंजता रहा – "लोग पैसे लेकर भी गधे नहीं हटाते।" इस विचार को पुष्टि मिली एक मदरसे के मेनगेट पर, जब कुछ वेतन भोगी अपनी आंखों के सामने छात्रों को खिसकते देख रहे थे किन्तु मौन साधे हुए थे मानों उन्हें सांप सूंघ गया हो। □

बूढ़ा पीपल

निशान्त

अबोहर अंचल के हमारे गांव मौजगढ़ की 'गिनाणी' (कम गहरा तालाब) काफी याद रहने लायक चीज है। हम छोटे-छोटे थे तब भी निःसंकोच वर्षा ऋतु में इसमें नहाने के लिए घुस जाते थे। वर्षा के मौसम के बाद यह जल्दी ही सूख जाया करती थी और हम इसे खेल के मैदान के रूप में भी इस्तेमाल कर लिया करते थे। लोग-बाग डिग्गी और जोहड़ पर पहुंचने के लिए इसमें से शार्ट-कट रास्ते बना लेते थे।

इस गिनाणी की याद आती है तो इसके साथ ही याद आती है इसके किनारे उगे हुए दरख्तों की। इसके किनारे कई पीपल और एक सरेस का दरख्त है। गांव में आपस के भाई-चारे की कमी आ जाने के कारण यद्यपि आजकल इनके नीचे कोई नहीं बैठता। लोग अपने पशु भी इनके नीचे नहीं बांधते। लेकिन उन दिनों में गांव के जीवन में इन दरख्तों का काफी महत्व था। गर्मी के मौसम में सबके मवेशी इनके नीचे बैठते थे। आदमी अपनी-अपनी चारपाइयां इनके नीचे बिछा लेते थे। हम बच्चे इनके ऊपर और नीचे कई तरह के खेल खेलते थे। काफी छोटे थे तब भी इनके नीचे बैठे गीली मिट्टी से खिलौने बनाया करते थे। मुझे याद है अपने घर से मैं एक दौड़ में इन दरख्तों के नीचे पहुंच जाया करता था। इतना ही नहीं कभी-कभार पंचायत भी इनके नीचे ही जुड़ती थी और हाकिम-हुक्मरान भी इनके नीचे ही लोगों को बुला लिया करते थे।

इन दरख्तों में एक पीपल था जिसे हम बूढ़ा पीपल कहकर पुकारते थे। उन दिनों में भी बेचारा यह टूट-टाटकर काफी छोटा हो गया था। फिर भी यह आज तक अपना अस्तित्व बनाये हुए है। इस 'बूढ़ीये पीपल' की याद आती है तो गांव के एक व्यक्ति तुलछाराम की याद भी अपने आप आ जाती है। वह जब भी इस पीपल के नीचे से गुजरता था तो बिल्कुल पागलों की

तरह बड़बड़ाने लगता था। उसकी बड़बड़ाहट का विषय गांव का सबसे बड़ा चौधरी होता था। संयोग यह भी था कि चौधरी की हवेली इस पीपल के ऐन पास थी। चौधरी हवेली में बैठा होता था या नहीं वह हवेली की ओर मुंह करके विभिन्न मुद्राएं बनाकर उसको ललकारता रहता था। अपनी इस बड़-बड़ाहट में वह चौधरी को सदा छोटे नाम से ही बुलाता था। मामूली गालियां भी उसके मुंह से निकल जाती थीं।

हम देखा करते थे, अधिकतर तुलछाराम का उधर से निकलना अपनी भैंसों को पानी पिलाने के लिए होता था। वह उस पीपल के नीचे आते ही बड़बड़ाना शुरू कर देता था और जोहड़ पर भैंसें पानी पिलाकर वापस घर पहुंचने तक उसी तरह बड़बड़ाता रहता था।

गांव के बड़े-बूढ़े हमें उसके पागलपन का कारण बताया करते थे कि आजादी के पहले अंग्रेजों के जमाने में इस पीपल से बांधकर चौधरी ने एक हरिजन परिवार को इतना पिटवाया था कि उनकी हालत देखकर तुलछाराम पागल हो गया। सदा-सदा के लिए पागल हो गया। और अब जब भी तुलछाराम इस जगह से गुजरता है तो अपनी बड़बड़ाहट में चौधरी को शामिल कर लेता है जैसे कि वह चौधरी को लानतें दे रहा हो।

बड़-बूढ़ों से ही हमने सुना था कि उस हरिजन परिवार की चौधरी से बनती नहीं थी। गरीब थे तो क्या? वे तीन-चार भाई पूरे लठैत थे। चौधरी से बराबर अड़े रहते थे। किसी बात में उससे दबते न थे। यह बात चौधरी को रड़कती थी। बस एक दिन जब उनके एक-दो भाई बाहर थे और एक-दो घर में सोये थे तो चौधरी के आदमियों ने उन्हें घर दबोचा। उन्हें इस पीपल से बांधकर इतना पीटा कि उनकी सारी हड्डियां चमड़ी के भीतर भूल गईं। नरम दिल वाला तुलछाराम उन्हें देखकर पागल हो गया। फिर जब तक जिया तब तक अपनी बड़बड़ाहट में चौधरी को लानतें देता रहा।

हमारे गांव के इस इतिहास का और कोई महत्व हो न हो हमारे सामने यह स्पष्ट कर देता है कि उस जमाने में गरीब लोग बड़े लोगों से लट्ठों की लड़ाई लड़ लेते थे। लेकिन इस आजादी में तो गरीब लोग इनके साथ लट्ठों की लड़ाई तो क्या वोटों की लड़ाई भी नहीं लड़ सकते, चुनाव भले ही सर-पंची का हो, या एम० एल० ए०, एम० पी० का, बड़े लोगों के बीच ही लड़ा जाता है। पंचायत मैम्बरी का चुनाव तो छोटे लोगों को इसलिए लड़ने दे दिया जाता है कि बड़े लोग इसे अपने अनुरूप नहीं समझते।

लाठी को तो अब लोगों ने रखना ही छोड़ दिया है, बेचारों की बन्दूक-पिस्तौल के आगे औकात ही क्या है? □

दक्षिण भारत की नर्सें

रामनिरंजन शर्मा 'ठिमाऊ'

देश के किसी भी कोने में आप जाइए —केरल की नर्सों का भुण्ड गुजरता हुआ आपको दृष्टिगोचर होगा। जहां भी नर्सों की आवश्यकता हुई, इनकी सेवाएं तैयार। केरल की लड़कियां अन्य पेशों में कार्य करती ही हैं किन्तु इस पेशे में तो वे अपना सानी नहीं रखतीं। जब मैं इनके बारे में सोचता हूं तो मन में इनके प्रति एक प्रकार की श्रद्धा उत्पन्न होती है। हम राजस्थानी अपनी पुत्रियों को इतनी दूर नहीं भेज पाते, क्योंकि हमारे संस्कार ही कुछ ऐसे हैं। अपनी पुत्री को दूर कमाने-खाने हेतु भेजने के लिए मां-बाप को एक बहुत बड़ी हिम्मत जुटानी पड़ती है और साथ ही पुत्री को भी साहसी एवं गम्भीर बनना पड़ता है।

बाहर जाकर अपने आपको उस स्थान के रहन-सहन, जलवायु तथा भाषा के अनुसार समायोजित करना वास्तव में साहस का काम है। केरल में सर्दी-गर्मी ज्यादा नहीं पड़ती, अतः इन्हें राजस्थान जैसे प्रदेश में अत्यधिक सर्दी तथा गर्मी को सहन करना पड़ता है। दूसरी कठिनाई इनके सामने भाषा की भी आती है किन्तु ये लड़कियां कुछ ही दिनों में काम-चलाऊ हिन्दी बोलने व समझने लग जाती हैं। स्त्री स्वभाव से कोमल होती है फिर भी ये बहादुर लड़कियां पुरुषों के बीच रहते हुए दक्षता से कार्य करती हैं। मैंने एक मरीज के रूप में इनकी सख्त ड्यूटी को देखा है। दिसम्बर तथा जनवरी की ठिठुरती रातों में जिस मुस्तैदी से ये दक्षिणी कन्याएं बीमारों की सेवा करती हैं वह एक सराहनीय बात है। यदि बीमार को रात के दो बजे दवा देनी है तो ये उसी प्रकार मुस्कराती हुई बीमार को आकर जगाती हैं और अपने पुनीत कर्त्तव्य का पालन करती हैं। मैं कई बार बीमार के रूप में इनकी सेवा से अभिभूत होकर नतमस्तक हुआ हूं। धन्य हैं ये तथा इनकी माताएं। राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने में दक्षिण भारत की इन साहसी पुत्रियों का पूरा हाथ है।

दक्षिण भारत के स्वादिष्ट व्यंजन इडली, डोसा, सांभर बड़ा तथा उपमा आदि ने भी देश के कोने-कोने में धूम मचा रखी है। दक्षिण तथा उत्तर भारत के लोगों को अधिक नजदीक लाने में इन व्यंजनों ने भी सहयोग दिया है। देश के किसी भी शहर में जाइए, इन व्यंजनों का होटल अवश्य मिलेगा तथा उत्तर भारत के लोगों ने भी इन्हें खूब अपनाया है। लेखक का विश्वास है कि राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाने में दक्षिण भारत की नर्सों से हम उत्तर भारतवासियों को शिक्षा लेनी चाहिए।

□

लकड़ी का हाथ

वसंतीलाल सुराना

एक दिन विशेष काम से मुझे जयपुर जाना हुआ। जाते वक्त रास्ते में दूदू के मोड़ पर सामने से आते दिल्ली ट्रान्सपोर्ट के एक ट्रक से भिड़न्त हो गई। दो व्यक्ति तो घटनास्थल पर ही मर गये। दो के हाथ-पांव कट गये, कुछेक घायल हो गये।

मुझे जब होश आया तब मैंने अपने आपको एस० एम० एस०, जयपुर के अस्थि-चिकित्सक के कक्ष में पाया। मैंने अपने एक हाथ को कोहनी के ऊपर तक कटा पाया। अठारह सेन्टीमीटर का एक स्टम्प हाथ की जगह लटका रह गया। मुझे पास ही सोये एक मरीज के सम्बन्धी ने सलाह दी कि मैं उस ट्रान्सपोर्ट कम्पनी से क्षति-पूर्ति की मांग करूं। मैंने अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े ही स्थानीय वकील की सहायता से क्षति-पूर्ति का दावा दायर कर दिया। कई चक्कर लगाने, उस बस में बैठे लोगों के बयान कराने तथा उस ट्रान्सपोर्ट के ट्रक के ड्राइवर पर दोष साबित करने में मैंने अपंग होते हुए, आर्थिक विपन्नता सहते हुए, कितनी कठिनाइयां सहीं उसका अन्दाजा, यदि मैं विकलांग नहीं होता तो अनुभूति नहीं होती। किसी प्रकार आधा मुकद्दमा मैं जीत सका और क्षति-पूर्ति के 60 हजार रुपयों की जगह 30 हजार रुपयों की स्वीकृति मिली। लेकिन जो मर गये या अंगहीन होने पर भी जिन्होंने क्षति-पूर्ति की मांग नहीं की, उनको कुछ भी नहीं मिला।

वह मेरा दायां हाथ था। स्वास्थ्य लाभ कर जब मैं स्कूल लौटा तो अब अपने आपको ब्लेक-बोर्ड पर लिखने के सर्वथा अयोग्य पाया। स्कूल व्यवस्थापकों ने भी मेरे जैसे अपंग शिक्षक के सेवाकाल को निरन्तर करने में पर्याप्त आनाकानी की। लेकिन मेरे पूर्व के संघर्षों ने मुझे बल प्रदान किया, और मैंने प्रयत्न कर बायें हाथ से लिखना शुरू किया। और सफलता प्राप्त कर ली।

मेरी अपंगता मेरे हाथ पर हवा में उड़ती कमीज की बांह से परिलक्षित

होकर मेरे चेहरे पर उभरती। और मेरे अन्दर क्रमशः हीनता के भावों का प्रादुर्भाव होने लगा। मेरा स्वाभिमान बिना किसी का आभार ग्रहण किये ही खंडित होने लगा। मैं भी अपंगों की श्रेणी में जा बैठा। पूना के मिलिट्री हास्पिटल में कृत्रिम हाथ के लिए गया। वहां अवश्य ही खाना खाते समय जब दोनों हाथ-विहीन व्यक्ति को मैं एक हाथ वाला उनको खाना खिलाने में मदद करता तो स्वाभिमान तथा गर्व की अनुभूति होती, लेकिन मुझे तो अंग वालों में एक अंग-विहीन के रूप में कार्य करना होता था अतः मेरा गर्व क्षणिक होता, मेरा यथार्थ अधिक स्थाई। मैं कृत्रिम हाथ लगवाकर वापस लौटा, वह कृत्रिम हाथ आखिर कृत्रिम ही था, लेकिन जहां वह पुस्तक के पन्ने उलट देता वहीं वह जमीन पर गिरे नोट को उठा लेता, तथा 20 किलो वजन की पानी से भरी बाल्टी भी उठा लेता। अब मैं अपंग नहीं रहा, अब मेरी कमीज की बांह हवा में उड़कर मेरी अपंगता को जग जाहिर नहीं करती है। आज भी मुझे वह दिन याद है जब कि कृत्रिम हाथ लगने के पूर्व बस में चढ़ने पर एक व्यक्ति ने मुझे अपंग समझकर मेरे पर दया करके, बस में मुझे पहले चढ़ने देने का अहसान-सा कर रहा था। मैंने उसकी उस सहायता को कबूल नहीं की और बस में चढ़ने के बजाय नीचे उतर आया। कृत्रिम हाथ लगने पर अब किसी के अहसानों का भान ही नहीं होता। □

स्मृति की दीपशिखा

चमेली मिश्र

(1)

लक्ष्मी मेरे प्रशिक्षण-काल की अंतरंग सखी है। प्रथम दिन कॉलेज में प्रवेश करने पर उसने ही मुझे अपने माधुर्यपूर्ण व्यवहार से प्रभावित किया था। शीघ्र ही हमारे विचारों तथा मन का मेल हो गया था। हमने अपने सुख-दुःख आपस में बँटाये हैं। लक्ष्मी की सौम्यता ने मुझे इतना प्रभावित किया है कि मैं इसे अपने सुख-दुःख की साथिन समझने लगी। उम्र में मुझसे तीन वर्ष बड़ी होने पर भी मैं लक्ष्मी को 'दीदी' सम्बोधित नहीं करती थी।

हँसी के अजस्र प्रवाह के कारण, वह सदैव प्रसन्नचित्त दिखलाई पड़ती। उसकी हँसी संगीत-लहरी के सदृश हृदय के तारों को झंकृत कर देती। उसका माधुर्यपूर्ण व्यवहार ही वशीकरण का एक मन्त्र था। बस, उसी मन्त्र के वशीभूत होकर मैं आज तक उसकी स्मृतियों को हृदय के एक कौने में संजोये हूं।

"कौन ?"

"मैं हूं लक्ष्मी।" यह सुनते ही जैसे मेरी अस्वस्थता भाग गई। शरीर में स्फूर्ति आ गई। मैं तकिये का सहारा लेकर बैठ गई। मैंने कुर्सी की ओर बैठने का संकेत किया और शुष्क आंखों से उसका स्वागत किया।

"अब कैसी है चमेली ? प्रधानाचार्य तुम्हारी छुट्टी स्वीकृत करने में आनाकानी कर रहे थे। कहते थे कैसे विद्यार्थी हैं ? प्रशिक्षण को हँसी समझते हैं। यों समझते हैं, जैसे शिक्षा-विभाग ने दस महीने की सैर-सपाटे की छुट्टियां दी हैं। अब छुट्टियां नहीं मिलेंगीं, परीक्षा पास है।"

इस तरह उन्होंने अच्छा-खासा भाषण दे डाला—तब मैंने बीच में ही टोक कर कहा—"सर, वह अस्वस्थ है। उसे टॉयफायड हो गया है। दस दिन और लग जायेंगे। तुम चिन्ता मत करो। आराम करो। स्वस्थ होने पर कॉलेज

जाना। अगले महीने अपने फाइनल-लैसन भी हैं।"

"ओह ! यह तैयारी भी करनी है। क्या करूं, लक्ष्मी, अर्थाभाव और बीमारी ने जीवन को झकझोर दिया है। ऐसा लगता है ये मेरा अन्त कर देंगे। कितने अरमान थे, क्या-क्या सोचा था अपने स्वप्निल-संसार को बसाने के लिये ! पर सब चौपट हो गया। भाग्य भी तो है, केवल प्रयास ही क्या करे ?"

"चमेली ! तुम किस सोच में पड़ गई ? ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है।"

"नहीं ! लक्ष्मी, मैं नहीं मानती तेरी इन बातों को। मैं तो अब नास्तिक हो गई हूं। ईश्वर कहां है ? नहीं तो क्या सब दुःख हम जैसों को ही देता। ऐसा हमने उसे अगोचर का क्या बिगाड़ दिया है ?"

"अच्छा तो मैं चलती हूँ। तुम आराम करो। अशान्त मत होओ। मिस भार्गव को तुम्हारी देखभाल के लिए कह दिया है। वैसे भी तुम्हारी रूम-मेट होने के नाते वह तुम्हारा ध्यान तो रखती ही है। इधर वार्डन से भी कह दिया है। यदि किसी और चीज की आवश्यकता हो, तो मुझे बता दे। मैं घर से ले आऊंगी। अंधेरा घना हो रहा है।" और यह कहते-कहते लक्ष्मी मेरी दृष्टि से ओझल हो गई।

कितनी दयालु है ? बाह्य रूप कुरूप है, पर अन्तर कितना निश्छल, ममता-मय एवं दया से लबालब भरा हुआ।

पर आजकल तो लोग बाह्य सौन्दर्य ही देखते हैं। कितने ही लड़के आये देखने, पर उसकी कुरूपता और मोटापा दीवार बन गये, उसके पाणिग्रहण में। खैर ! वह भी कुछ कम न निकली। अविवाहित रहने का निश्चय कर लिया और आज वह पुरुष जाति को यह दिखा देना चाहती है कि अब वह युग लद गया, जब नारी को पुरुष की दासी तथा आश्रिता समझा जाता था। आज तो वह हरेक क्षेत्र में पुरुष के कंधे-से-कंधा मिला कर चल रही है। वह है भी बड़ी स्वाभिमानिनी।

एक विधुर ने उसका जीवन-साथी बनने की इच्छा प्रकट की थी। मां न होने पर भी, वह उसे छह बच्चों की मां होने का सौभाग्य देना चाहता था। लक्ष्मी को यह स्वीकार ही न हुआ। जब आधी उम्र गुजर गयी, तो शेष में क्या रह गया है। बासन्ती बहारों के सपने तो छिन्न-भिन्न हो गये। अब क्या राख को सजायेगी। सारी जिन्दगी सुलगते ही गुजर गई, अब तो जलने की प्रतीक्षा है।

पर मैं किस कारण सुख से वंचित रही। सुन्दर न सही पर कुरूप भी तो नहीं हूं। सब कुछ मिला कर एक आकर्षक युवती हूं। पर मेरे सिद्धान्त मेरे

सुख-संसार की दीवार वन गये। मैं किसी की कृतज्ञता नहीं चाहती। माता-पिता वहुत सीधे-साधे हैं। लड़कियों की शिक्षा के समर्थक हैं।

मैंने तो अपने विद्यार्थी जीवन में पिताजी की मोटी और फटी हुई आधी धोती ओढ़कर ही सर्दियों से संघर्ष किया, पर वह धोती ऊनी शाल से भी ज्यादा गर्मी देती थी।

आज तो सभी सपना हो गया। वह धोती भी अव नहीं रही। कितना निष्ठुर है विधाता तू! क्यों हमारे सभी सुख के साये छीन रहा है?

इन्हीं विचारों में निमग्न, न जाने कब मुझे निद्रादेवी ने अपने सुखद संसार में बुला लिया प्रात: सूर्य-रश्मियां अपना रेशमी-स्पर्श कर-करके मुझे गुदगुदाने लगीं। पर मैंने आंखें न खोलीं।

सहसा लक्ष्मी की आहट ने मुझे चौंका दिया। एक पैकेट विस्कुट तथा कुछ फल हाथ में लिये, वह श्यामवर्ण, कुन्दकली-सी, श्वेत दंत-पंक्ति से इस प्रकार मुस्करा रही थी, मानो सभी खुशियां वह मेरे आंचल में भर देना चाहती है।

"अव कैसी तबियत है?"

"अच्छी हूं। कल कॉलेज आऊंगी।"

"नहीं, अभी दो-चार दिन और आराम कर लो। कॉलेज कहीं भागा नहीं जाता।"

"नहीं लक्ष्मी, अब मैं बिल्कुल ठीक हू। देखती नहीं, मैं अच्छी तरह चल-फिर सकती हूं।" कहकर मैं विस्तर से उठ बैठी।

(2)

बार-बार हाथ कान और उंगली पर जाता है, मुझे बुरी आदत है—अंगूठी के नग को सहलाने की तथा कानों के कुण्डल कान में ही घुमाने की। अंगूठी के अभाव में, हाथ उसके चिरकाल से पहने रहने के कारण पड़े निशान पर जा पड़ता है। चर्म-से-चर्म का स्पर्श होता है और मैं विचारों में खोकर, शून्य में एकटक देखती रहती हूं पर क्या करूं विवशता है! लक्ष्मी न होती तो मेरी यूनिवर्सिटी फीस का प्रवन्ध भी न होता। फीस जमा कराने की अन्तिम तारीख थी। मैं निरुपाय और निराश बैठी थी। सहसा लक्ष्मी आ गई। उसकी आहट ने मेरी तन्द्रा भंग की।

"अरे! कैसे बैठी है? कॉलेज नहीं चलेगी क्या?"

"हूं। पर मैं आज कॉलेज नहीं जाऊंगी। तुम चली जाओ। समय हो गया है।"

"कॉलेज क्यों नहीं जाती? क्या हो गया है तुझे? कैसे गुमसुम बैठी है?

कुछ बताये तो पता चले।"

मैंने रुआंसी होकर कहा—"फीस का प्रबंध नहीं हुआ है।"

"तुम चलो मेरे साथ, हमारे घर तक। वहां चलकर कुछ प्रबन्ध कर लेंगी। मेरी पड़ौसिन ब्याज पर, जेवर रखकर रुपये देती है।"

"पर मेरे पास कोई विशेष जेवर भी तो नहीं है।"

"खैर! मैं यूंही ब्याज पर मांग देखूंगी।"

मैंने अपनी अंगूठी और बालियां उतारकर लक्ष्मी को दे दीं। "लक्ष्मी किसी का एहसान ठीक नहीं। न जाने रुपये लौटाने का प्रबन्ध कब होवे। ये गहने रख कर रुपये ले लो। होंगे तब छुड़ा लूंगी, वरना डूब जायेंगे।"

लक्ष्मी की आंखों में आंसू आ गये। मैं उसकी असमर्थता समझती थी। वह भी मेरी ही तरह मध्यवर्गीय परिवार की है। मां बचपन में ही अपनी स्नेहिल-छाया से वंचित कर गई। भाइयों का साया है सिर पर, पर न के समान। पिताजी किनारे के वृक्ष हैं, न जाने कब उखड़ जायें।

लक्ष्मी पर अपनी तीन छोटी बहनों के भरण-पोषण का दायित्व भी है। फिर भी वह सदा मुस्कराती रहती हैं। न जाने उसकी यह हँसी ही रुदन है। अतिथि-स्वागत तो जैसे उसका जन्मसिद्ध अधिकार है।

मुझे कभी-कभी हँसी आ जाती लक्ष्मी के नाम पर। आंख के अन्धे नाम नयन सुख वाली कहावत चरितार्थ होती है। उसका लक्ष्मी नाम ही उसका उपहास-सा करता प्रतीत होता है।

जलपान के अवकाश में सभी सहपाठिनें चाय पीतीं, नाश्ता करतीं। पर मैं लक्ष्मी के साथ ही रहती। हम भी जब जेब गर्म होती, चाय पी लेतीं।

कॉलेज ग्राउण्ड में एक नीम का पेड़ था। हम उसी की छाया में अपना समय व्यतीत करतीं। प्रशिक्षण यूंही अभावों में समाप्त हो गया। हम दोनों द्वितीय श्रेणी में पास हो गईं। यही हमारे अभावों की पूर्ति थी।

(3)

आज सभी कुछ है, पर वह अतीत के दर्द भरे दिन नहीं। उनकी मधुर स्मृतियां ही मेरी प्रेरणा है। जो कुछ हूं, उन्हीं स्मृतियों की बदौलत हूं। मेरा क्या अस्तित्व है, मैं कुछ भी न जान पाई। लगता है, लक्ष्मी ही मेरी सच्ची पथ-प्रदर्शिका है। वह ममता की मूर्ति न होती, तो न जाने आज मैं कैसी दयनीय स्थिति में होती। कुछ कह नहीं सकती।

आज लक्ष्मी मुझ से दूर है। पर हृदय से नहीं! हृदय-पटल पर उसकी छवि ऐसी अंकित हो गई है कि कितने ही आंधी-तूफान आयें, उन्हें विनष्ट नहीं कर सकते। वह तो सदा-सदा प्रेरित करती रहेगी। जब-जब मुझे दुख के बादल घेरेंगे, वह दूर बैठी उनका समाधान करती रहेगी। □

झरोखा

श्रीमती हरिकान्ता दशोरा

जी हां, आइये। अरे रे ऽ ऽ ऽ आइए···न···झिझकिये मत। इसमें इतना घबराने की क्या बात है मैं आपको कहीं और जगह तो नहीं ले चल रही हूं न इतनी दूर ही कि आपके नाजुक पांव चल-चल कर थक जाएं बस पास ही। आपके लिए और मेरे लिए। मत पूछिये, ये दूरियां अन्तराल लिए हैं, मैं भुक्त भोगी हूं।

जी हां, यह और कोई स्थान नहीं कार्यालय है कि आप यह कह उठें कि बस यहीं आना था। जैसे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त 16 संस्कार समाज द्वारा सम्पन्न होते हैं वैसे ही आपकी नियुक्ति से सेवा मुक्ति तक के सेकड़ों संस्कार इस कार्यालय द्वारा सम्पन्न होते हैं। लगता है आप बड़ी समझदार हैं। साइन वोर्ड पढ़कर मेरे से दो कदम आगे चल पड़ी हैं। खैर कोई बात नहीं आपको अपने सारे काम आज ही निपटा करके जाना है इसलिये जल्दी हो रही है। खैर कोई बात नहीं आप आ गये हैं चलिये गेट पर जो सफेद वर्दी में ठिगने कद का सांवला नौजवान खड़ा है, और बड़ी अदा से आपको झुक-झुक कर सलामकर रहा है। यह गुलामी का चिह्न है पोज ऐसा बनाएगा जैसे एयर इण्डिया के महाराजा का हो। उसका नाम जी० आर० है।

यह चपरासी है या चौकीदार यह तो मैं नहीं समझ पायी हूं, पर हां इतना जरूर जानती हूं कि है बड़ा बत-रसिया।

खैर मैं मिस्टर जी के पास ठहर ही गई तो आपकी भिड़न्त हो गई न बाई से। आप कार्यालय में लगे चित्र, नक्शे, परिपत्र, सूचना आदि में खो गईं। आप को ध्यान ही न रहा। बाई कब से आपका नख-शिख निरीक्षण कर रही है— बुरा मत मानिए यह तो उसकी बड़ी पुरानी आदत है। घंटी की आवाज में वो अपनी बुलन्द आवाज डुबोती चली जा रही है—ये हमारा मूविंग टेलीफोन है।

आप घबरा रही हैं, अन्दर जाते हुए शायद मैडम से पहली बार मुखातिब हो रही हैं। आप अपने कार्य के प्रति सतर्क और दक्ष हैं तो मैडम अपने नाम

की भांति स्नेहमयी हैं पर···खैर छोड़िये भी मुझे आप काफी भोली लग रही हैं। और किसी-न-किसी समस्या को लेकर उलझन में पड़ी हैं। देखा मैडम ने कितनी जल्दी समाधान निकाला, आपकी समस्या चुटकी में हल हो गई, मैडम की फुर्ती से आप काफी चमत्कृत लगती हैं। और एक सन्तुष्टि का भाव लिये आप वाहर निकल गईं।

ओह याद आया आपको अपनी चपरासिन की छुट्टियों के बारे में कुछ पूछना है, तो वस आप वायीं ओर मुड़ जायें। वो जो लाल रंग का वड़ा-सा रजिस्टर खोले उस पर झुके हुए जो कुछ लिख रहे हैं वे ही आपको छुट्टियों के बारे में वतायेंगे। लाल रंग उनका प्रिय रंग है। आप कृपया उनसे शालीनता से पेश आयेंगे तो ठीक—नहीं तो···तो···। खैर अव तो काफी परिवर्तन आ गया है उनमें नहीं तो पहले पहल मुनि की भांति लगते थे वे। क्या भला-सा नाम था उनका···मुझे तो याद नहीं आ रहा है आपको याद आये तो—समुझि मन ही मन रहिये। आज लगता है बड़े अच्छे मूड में हैं। आपका काम सोलह आना हुआ समझो!

नव नियुक्त एक अध्यापिका ने अभी तक जॉइन नहीं किया है। आपकी कुछ अध्यापिकाएं पहले ही से अवकाश पर चल रही हैं। बहुत परेशानी उठानी पड़ती है आपको। इस संबंध में अपने वाबूजी से पूछा। उन्होंने पास पड़ी खाली कुर्सी की तरफ इशारा किया। कुछ समय बाद चश्मे को ठीक कर उन्होंने पूछा। आपने अपनी समस्या अभी उनके सम्मुख रखी ही थी कि कमरा किसी घंटी की कर्कश ध्वनि से गूंज उठा वे उठकर चले गये। बात अधूरी रह गई। 10 मिनट बाद पुनः आये और गम्भीरता से समाधान करने लगे। तभी घंटी बज उठी उन्होंने जल्दी-जल्दी बात पूर्ण कर दी और चल दिये। लगता है। अब आप भी आने का उपक्रम कर रही हैं।

शायद आज आप कमर कस के आई हैं अपने सब काम निपटाने के लिए कमर कस रखी है। आपको एक अध्यापिका के मेडीकल बिल बाबत कुछ जानकारी चाहिए। आइये इस बार मैं ही परिचय करवा देती हूं, ये वावूजी मेडीकल बिल बनाते हैं। आप कमरे में प्रविष्ट हो गई हैं, पर उन्हें ध्यान नहीं है—अपने काम मे तल्लीन हैं आपने जव बावूजी कहा तो गर्दन उठ गई। बिल्कुल प्रश्न वाचक चिह्न की भांति आपने अपना काम वताया पर हर बार में नका रात्मक गर्दन हिल गई। बस इतना आप्त वचन जरूर सुना आपने कि जब आपके बिल का नम्बर आयेगा तभी बनेगा। यहां सब काम सीरियल से होता है। देखा नहीं इनका कमरा कितना तरतीब से सजा है, लगता है सभी फाइलें हाथ बांधे अपने कमाण्डर की आज्ञा का इन्तजार कर रही हैं।

सामने निगाह गई तो कमरा बन्द मिला। आप शायद सोच रही हैं कि

स्टोर होगा। आपकी होशियारी की मैं दाद देती हूं। जी हां यह आधा स्टोर रूम ही है, और आधा स्टोर कीपर का है पर आज वो छुट्टी पर गांव गया हुआ है। अब जब कभी आये तो उनसे मिल लेना। उनकी बिच्छु कट मूछों से आप उन्हें पहचान जायेंगी।

आप अब आवक-जावक कमरे के बाहर खड़ी सोच रहीं हैं कि अब अंदर जाऊं या नहीं पर जाना तो पड़ेगा ही "डाक" जो देनी है। ये जो आपकी ओर देख तिरछी सी मुस्करा रही हैं और कुछ आकर्षक से व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं वो हमारी दीदी हैं इनके पास बैठने वाली बहिन जी के बारे में कुछ नहीं बताऊंगी बस यही कि बड़ी शैतान की खाला है। इनके बारे में फिर कभी बताऊंगी। अभी क्रमश: ही समझिये ! मुझे लगता है बहुत बोल गई हूं। पर क्या करूं आपकी मदद तो करनी पड़ेगी।

इस माह का आज अंतिम दिन है और मैं खूब समझ गई आप सोच रही हैं कि यदि 'पे बिल' पास हो गये हों तो लेती जाऊं। फिर आपका गांव भी तो बहुत दूर हैं, मालूम नहीं डाक से कब आये। बाबूजी से आपने अपने स्कूल का बिल मांगा वो ढूंढ़ने लगे तो आपने देखा इस कमरे में भीड़ बहुत कुछ ज्यादा है शायद जनता क्लास रूम है। पंच परमेश्वर की भांति पांच जने काम पर तैनात। देखिये सबके बारे में बताना कतई जरूरी नहीं है कुछ तो Official Secret रहने दीजिए। सादगी और श्रृंगार को साथ देखकर आपको आश्चर्य हो रहा है न पर अधिक नहीं बस 10 से 5 तक का ही साथ है। फिर सब अपने नीड़ के निर्माण में लग जाते हैं। यह लीजिए आपको अपने स्कूल का बिल मिल गया। देखिए हैंड राइटिंग पर मत जाइए और नाम के झमेलों में भी मत पड़िए। आप इस नाम को सुविधानुसार उषा, निशा, बीसा, कुछ भी पढ़िये और समझिये बिल्कुल गीता के श्लोको की भांति। अरे रे ऽऽऽ आप बाहर हो गई कमरे के चार बज गये इस झमेलों में।…नामांकन अभियान की सूचना आप कार्यालय को प्रेषित कर चुकी हैं। किन्तु आपके पास इससे संबंधित रिमाइण्डर आ चुके हैं लीजिए आप तो स्वयं संगणक के कमरे में दाखिल हो गईं। आपने अपनी समस्या रखी मुस्करा कर, उन्होंने गलती स्वीकार कर ली कि आपकी सूचना उसी दिन डाक में चढ़कर आई जबकि मैं रिमाइण्डर भेज चुका था। इस सहज और शिष्ट वार्तालाप से आप स्वयं को संतुष्ट महसूस कर रही हैं।

साढ़े चार बज गये—और आपका एक काम और रह गया है।—कोई फिक्सेशन संबंधी केश है पर आपको उनके कमरे से बाहर आती आवाजें बाहर ही रुकने का आगाह करती प्रतीत होती हैं। पर आप चली जाइये न अन्दर। इसमें घबराने की क्या बात है—ये लोग किसी पेचीदा मामले पर बहस कर

रहे हैं, बार-बार R. S. R की दुहाई दे रहे हैं। आप यह कार्य फिर कभी पर छोड़कर आगे बढ़ जाती हैं।

अरे रे सुनिए तो On duty सर्टीफिकेट तो लेना ही भूल गईं। आज का पूरा दिन बीत गया आपका कार्यालय में। नियम से तो ले लेना चाहिए। किससे टूर्नमिंट में On duty लेने में आपको कितना पसीना बहाना पड़ा। न जाने कितने रोष का शिकार होना पड़ा। लगता है मैंने आपकी स्मृति को हरा कर दिया है पर जाना तो पड़ेगा ही। आपने कमरे में प्रविष्ट होते ही संक्षिप्त प्रश्न रखा "बाबूजी On duty तो झट से उत्तर मिला। क्या है बहिन जी" आवाज सुनकर आप घबरा गयीं तब आपने सोचा आज भी ये फाइलें पटक कर कमरा बंद कर न चल दें। पर आपकी परेशानी देखकर जो पास बैठी बहन जी मुस्करा उठी हैं, उन्होंने आपको बैठने को कहा—उनसे कुछ बातें हुई, योजना संबंधी बुक बैंक, अल्प-बचत की इन बातों से फुर्सत मिली तो देखा—बाबूजी नदारद। आप फिर क्षणिक घबरा उठीं। S D. I. बहिन जी ने आपको आश्वासन दिया—कि डाक द्वारा आपकी On-duty भिजवा दी जायेगी। पांच बज गये, आप उठ खड़ी हुईं। तभी सफेद वर्दी में एक लम्बा-सा व्यक्ति यह पूछते दाखिल हुआ कि आप अमुक जगह की बहिन जी हैं।

आपने स्वीकारात्मक सर हिलाया तो डाक का एक पुलिन्दा पकड़ा दिया बड़े अदब से। यह भंवरसिंह है हमारे कार्यालय का एक अन्य चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी। □

शून्य की कहानी

जसवन्तमल मोहनोत

मेरा नाम शून्य है। मुझे ठीक-ठीक नहीं पता कि मेरा जन्म कब और कहां हुआ। पश्चिम के देश मुझे बारहवीं शताब्दी में अरब की उत्पत्ति मानते हैं। परन्तु असल में तो ईसवी सन् के आरम्भ से ही भारत के लोग मुझसे परिचित रहे हैं।

खैर, मेरी जन्मस्थली कहीं भी रही हो और मेरी आयु कुछ भी हो, मुझे इससे कोई शिकायत नहीं। इतना मैं अवश्य कहूं कि मेरा अस्तित्व आधुनिक सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण रहा है। जैसे मानव सभ्यता के विकास में पहिये का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, वैसा ही बहुत कुछ योगदान मेरा भी रहा है। और हम दोनों की आकृति कितनी मिलती जुलती है। पहिया भी वृत्ताकार और मैं भी वृत्ताकार।

जिन देशों को मेरे उत्पत्ति का पता नहीं चला वहां पर गणित के ज्ञान का विकास ही रुक गया। मेरे ही आविष्कार से संख्याओं को दस के आधार पर लिखने में सुविधा मिली। आज संसार के सभी देशों के लोग अपनी गणितीय गणनाओं में मेरा उपयोग कर रहे हैं। दशमलव प्रणाली भी मेरी ही देन है। मेरे अग्रज अंक एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नौ को तो सभी देशों के लोगों ने मुझसे बहुत पूर्व स्वीकार कर लिया था। भले ही उनको अलग-अलग रूप या संकेत दिया हो, किन्तु यह कितने गर्व की बात है कि भिन्न-भिन्न देशों से मुझे जो आकृति मिली है वह एक ही है, वृत्ताकार। हां कुछ लोग मुझे भूलकर गोल भी कह देते हैं।

पहिले लोग मुझे मेरे परिवार का सबसे छोटा सदस्य मानते थे और अनन्त को सबसे बड़ा। किन्तु आज मेरी स्थिति ठीक बीच में है। मेरे संख्या परिवार में मुझसे जितने अग्रज हैं, उतने ही मुझसे अनुज। मेरे अग्रज धनात्मक और अनुज ऋणात्मक है। पर मैं, मैं न तो धनात्मक हूं न ऋणात्मक।

परीक्षा में तो बच्चे मुझसे घबराते हैं। वे नहीं चाहते कि मैं उनकी कापी में अकेला ही पहुंच जाऊं। हां अकेला न जाकर अपने अग्रज अंकों के साथ रहूं तो मेरा स्वागत हो जाता है। पढ़ने वाले विद्यार्थियों की कापियों में मेरा अकेले जाने का स्वभाव नहीं।

एक से नौ तक की संख्याओं के बाद अगली संख्याओं को लिखने में मेरा ही उपयोग सबसे पहिले हुआ। तभी दस लिखना संभव हुआ और आगे की संख्याओं का लिखना आसान हो गया।

भारतीय गणितज्ञ मेरी विशेषताओं को सदियों पूर्व से जानते थे। उस समय संसार के दूसरे देश मुझे पाने को लालायित थे। भारत के कितने ही ऐसे प्राचीन ग्रन्थ हैं जिनमें मेरी विशेषताओं का उल्लेख मिलता है। तीन सौ-वीं ईसवी में वक्षाली हस्तलिपि के मूल की रचना में मेरा उपयोग हुआ है। सातवीं शताब्दी के गणितज्ञ ब्रह्मगुप्तकृत ब्राह्म-स्फुट-सिद्धान्त में मेरी परिभाषा मिलती है जिसमें उन्होंने मुझे दो समान राशियों के अन्तर के तुल्य कहा है।

आज संसार के लोग मेरी कई अद्‌भुत विशेषताओं से आश्चर्य चकित हैं। क्या? मेरी कुछ विशेषताओं को आप भी जानना चाहेंगे। तो सुनिये—

मुझको किसी संख्या में जोड़ने पर योगफल वही संख्या रहती है। जैसे 5 और शून्य का योग पांच ही रहता है। 57 और शून्य का योगफल भी 57 ही रहता है यानि $x+0=x$

मुझको किसी संख्या में से घटाने पर उस संख्या के मान में कोई अन्तर नहीं आता। तीन में से शून्य घटाने पर तीन ही प्राप्त होते हैं और दस में से शून्य घटाने पर दस ही प्राप्त होते हैं। यानि $x-0=x$

हां यदि मुझ में से मुझको ही घटाने की चेष्टा करोगे तो मुझको ही प्राप्त करोगे। यानि $0-0=0$

और यदि मुझ में से किसी अन्य संख्या को घटाओगे तो उसका चिह्न परि-वर्तन हो जायेगा। वैसे शून्य में से तीन घटाने पर ऋण तीन प्राप्त होते हैं और शून्य में से ऋण तीन घटाने पर तीन प्राप्त होते हैं। यानि $0-x=x$

पता है, मुझसे किसी संख्या का गुणा करने पर गुणनफल सदैव शून्य ही प्राप्त होता है। चाहो तो मुझे चार से गुणा करो और चाहो तो पचास से, गुणनफल के रूप में मेरा ही प्रतिरूप होगा। यानि $x \times 0=0$

वैसे भारतीय गणितज्ञों ने तो मेरा किसी संख्या में भाग अवैध माना है। वास्तव में मेरा किसी संख्या में भाग निश्चित परिणाम नहीं देता। शून्य द्वारा भाजित किसी संख्या के भजनफल को अनन्त कहते हैं। यानि $x \div 0 = \infty$

मेरे में यदि किसी संख्या का भाग दिया जाय तो भजनफल में मैं ही प्राप्त हो जाता हूं। $0 \div x = 0$ चाहे मेरा वर्ग करो या घन करो, वर्गमूल ज्ञात करो

या घनमूल, परिणाम स्वरूप मुझको ही प्राप्त करोगे ।

हां, यदि किसी संख्या के घात के रूप में मेरा प्रयोग हो तो उस संख्या का मान सदैव एक ही प्राप्त होगा । पांच घात शून्य हो, चाहे बावन घात शून्य हो और चाहे हजार घात शून्य हो, सबका मान एक ही होगा । अर्थात् $x^0 = 1$

साधारण जन के लिए शून्य की प्राप्ति दुर्लभ है । ज्ञानी और तपस्वी लोग ईश्वर को प्राप्त करने के लिए शून्य की खोज करते हैं, मेरा पता पूछते हैं । मुझे खोजने के लिए उन्हें अपने आप को खो देना पड़ता है । और जो अपने आपको खो देता है उसे मेरी प्राप्ति होती है यानि अनन्तज्ञानी अनन्तदर्शी ईश्वर प्राप्त होते हैं ।

देखिये ना, बुद्धिजीवी वैज्ञानिकों ने मुझे कहां कहां बैठा दिया है ? पर्वतों की ऊंचाई और समुद्रों की गहराई नापने वालों ने मुझे समुद्रों की सतह पर बैठा दिया है । तापमान ज्ञात करने वालों ने सैण्टीग्रेड पैमाने में मुझे बर्फ जमने के बिन्दु पर रख दिया है । वायुदाव मापने वालों ने मुझे दावमापी की प्याली में रखे पारे की सतह पर बैठा दिया है । गणितज्ञों ने तो मुझे संख्या रेखा के ठीक बीचों बीच में स्थान दिया है । और महान दार्शनिकों व तपस्वियों ने तो मुझे सर्वोच्च स्थान देकर ईश्वरीय पद पर आसीन कर दिया है ।

□

एक कप दूध की खातिर

पी० राज दवे 'निराश'

आजकल हमारे यहां दूध की बड़ी किल्लत है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि यह किल्लत बनी ही रहे। बात वह नहीं है जो शायद आप सोच रहे हैं। जी हां, मैंने कोई गाय या भैंस नहीं पाल रखी है कि आप यह कहने लग जाएं, "तुम तो यही कहोगे भाई, तुम्हें तो दूध के खूब पैसे मिल जाते हैं, इन मास्टरों ने तो गांवों में क्या, शहरों में क्या, यह एक साइड बिजनेस खोल रखा है!" नहीं साहब, बिल्कुल नहीं, बात यह हरगिज नहीं है। अगर दूध बहुतायत से मिलेगा तो मुझे भी दूध कुछ ज्यादा खरीदना पड़ेगा जबकि अब मैं बड़े आराम से कह सकता हूं, "देखिये ना, पैसे देते हुए भी दूध नहीं मिल रहा है। अब देखो ना, पाव भर दूध बड़ी मुश्किल से मिला है और इसमें क्या तो खुद चाय पीयें और क्या बच्चों को दूध पिलायें।" सच मानें, एक पाव दूध की चाय तो मुझ अकेले को ही चाहिए। पेगे-पानी जैसी चाय मुझसे तो पी ही नहीं जाती।" यह सुन मेरे पड़ौसी मेरी अभिजात्यता से अभीभूत हो जाते हैं। वे भी खींसे निपोरते हुए कहने लगते हैं, "जी हां, जी हां, आपने बिल्कुल सही फरमाया, अब देखिये; हमने यह आधा किलो दूध पिया है और दो टाइम भी चाय ढंग से नहीं बनती। क्या जमाना आ गया है? आदमी दो टाइम चाय भी ढंग से नहीं पी सकता…" वे बुद्ध की तरह दार्शनिक लगने लग जाते हैं।

अब आपसे क्या छिपाना! मैं इस पाव दूध से चाहूं जितनी चाय बना सकता हूं। दस मेहमान भी आए हैं तो भी इसी पाव दूध में चाय बना लूंगा और ऊपर से इस किल्लत का रोना रो दूंगा कि साहब क्या करें दूध तो घी से भी मंहगा हो गया है और वे भी अहमदाबाद की झूमती मीनारों की तरह गर्दनें हिलाकर समवेत स्वीकृति देने लगते हैं। इस तरह अपने अभिजात्य बने रहने की मुझे आरामसुविधा होती हैं और मेरा गुजारा चलता रहता है।

लेकिन कल शुक्ला—शुक्ला को आप नहीं जानते, अरे वही जो मेरे साथ काम करता है, हां उसीने कल सब गड़बड़ करवादी। कल शाम वह और नीलम मेरे घर आए थे। सुजाता ने सुबह के बचे आधा पाव दूध से उनके लिए चाय बनाई। चाय जब बनकर आई तो शुक्ला ने चाय पीते हुए मेरी बेटी नीलू से पूछा, क्या पी रही हो, नीलू बेटे !

—चाय ! अंकल।

—अरे धत्, तुम्हें तो दूध पीना चाहिये।

मैं, दूध की कितनी किल्लत है यहां से शुरू कर दूध वालों की बदमाशियां, हिसाब में बड़बड़ी, दूध में पानी, समय पर नहीं मिलना जैसे विषयों पर एक लम्बा-चौड़ा भाषण देता, उससे पहले ही मेरी बेटी नीलू उठ खड़ी हुई।

'अच्छा पापा, हम चाय नहीं पीयेंगे।'

'क्यों बेटे ?' मैं मन ही मन शुक्ला को गाली दे रहा था।

'अंकल जी कह रहे हैं कि चाय नहीं पीनी चाहिए और हमारी स्कूल में हमारी मिस भी यही कह रही थीं।'

'क्या कह रही थीं, तुम्हारी मिस !' मैं झुंझला गया था।

'यही कि चाय नहीं पीनी चाहिये। दूध पीना चाहिये। बच्चों को दूध पीने से ताकत आती है, कमजोरी नहीं रहती और दिमाग तन्दुरुस्त रहता है और ·· अब वह भाषण झाड़ने लगी थी।'

'अभी तो दूध नहीं है बेटे, शाम को पिलायेंगे,' मैं निरुत्तर सा हो गया था।

'नहीं हम अभी पीयेंगे' कहते हुए उसने कप पटक दिया।

चटाक् ! कप टुकड़े-टुकड़े हो गया। चाय फर्श पर फैल गयी। मुझे क्रोध तो बहुत आया नीलू पर और शुक्ला पर भी पर चुप बैठा रहा और क्रोध को गर्म चाय के घूंट के साथ पीता रहा। शुक्ला न जाने क्या बोलता रहा, मैं हाँ-हूँ करता रहा, नीलू रोती रही।

'अच्छा चलूं ! शुक्ला ने उकता कर चाय का अंतिम घूंट लेते हुए कहा।

ऐं ! बैठो ना, ऐसी भी क्या····· मैं चौंक सा गया।

'अरे नहीं यार, आज थोड़ा वर्मा के वहां भी जाना है,' कहते हुए शुक्ला ने हाथ मिलाया। मैंने भी हाथ दबाया।

'फिर आना।'

'जरूर !

मैं शुक्ला व नीलम को विदा कर आया। तब भी नीलू रो रही थी। मैंने उसे डांटते हुए सा कहा—नीलू चुप करो।'

'नहीं मैं दूध पीऊंगी' वह और जोर से रोने लग गयी।

'दूध नहीं मिलता है बेटे, जब मिलेगा, तुम्हें खूब पिलायेंगे, मैं कुछ नरम

हो गया, उसे बहलाने लगा।

'आपको चाय क्यों मिल जाती ! आप चाय पीयेंगे तो मैं भी दूध पीऊंगी,' अब वह सहमे स्वर में रो रही थी।

'अब तू चुप भी करेगी या नहीं' मैं उसके रोने से उकता सा गया था।

'मैं···दूध···पीऊंगी······दूध पीऊंगी···' नीलू पांव पटक-पटक कर रोने लगी।

चटाक् ! मेरा हाथ हवा में लहराया और नीलू के गाल पर पड़ा। नीलू ने अपनी पूरी ताकत से रोना शुरू कर दिया। रोते-रोते जाने कब उसकी आंख लग गई। एक कप दूध की खातिर नीलू को एक चांटा इनाम में देने के पश्चात्ताप में मैं भी जलने लगा। बड़ी देर तक करवटें बदलता रहा। बड़ी मुश्किल से आंख लगी।

□

एक नीलू ही नहीं थी। जहां तक दृष्टि जाती थी बच्चे ही बच्चे खड़े थे। सबके हाथों में तख्तियां थीं—'हम दूध पीयेंगे।' 'हमें दूध पीने दो' और वे बीच बाजार से गुजर रहे थे। चाय की होटलों के सामने वे खड़े हो नारे लगाते—

''इन होटलों को······
बन्द कर दो !
होटल वाले······
दूध हमारा पी जाते हैं।
इन चाय वालों ने······
दूध हमारा छीन लिया है।
हमको······
दूध पीने दो।
············
············
············

दूर खड़ा मैं यह सब देखता रहा और सोचने लगा कि वास्तव में कितना दूध हमेशा होटलों पर जाता है। आदमी दिन भर में कितनी चाय पी जाता है······ मेरी सोच बढ़ती ही जा रही थी।

यही हैं नीरू के पापा,' भीड़ मेरे सामने आ खड़ी हुई। 'इन्होंने एक कप दूध की खातिर नीरू को पीटा' 'पकड़ो जाने न पाये' कहीं से आवाज आई है और मैं भागने लगता हूं, मैं आगे-आगे दौड़ रहा हूं और वे सब मेरे पीछे।

दूरी निरन्तर कम होने लगती है। मैं तेज भागने की कोशिश करता हूं पर हांफने लग जाता हूं, पसीना-पसीना हो जाता हूं। आखिर वे मुझे पकड़ ही लेते हैं।

'इनको उबलती हुई चाय की कड़ाही में उबाल दो······उबाल दो······ उबाल दो······' आवाजें आने लगती हैं। मैं फिर भागने की कोशिश करता हूं। अपने आपको छुड़ाने के लिए अपनी पूरी ताकत लगा देता हूं······

········ वाह पापा, मैं तो आपको जगा रही थी और आप डरकर खाट पर से ही गिर गये! लो चाय पीयो। नीलू चाय का कप लिए पास ही खड़ी हँस रही थी और मैं झेंपता हुआ जमीन पर से उठ रहा था। चाय का कप पकड़ने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। □

उखड़े हुए

प्रेम 'खकरधज'

गर्मियों के दिन रेलगाड़ी की यात्रा, रेगिस्तान का सफर, पसीने की लकीर गंधाते, ऊंघते इन्सान, खासा उबाऊ और बोरिंग वातावरण ऐसे में लोग चाहते थे कहीं कोई कुछ बात कहे, जिससे समय गुजरे। भले ही कोई बचकाना किस्सा, कोई संस्मरण या कोई अश्लील चुटकुला ही हो। अफवाह या राजनैतिक शगूफ़ा लेकिन वे सब एकदम चुप थे केवल गाड़ी के पहियों, उड़ती रेत की आवाज डिब्बे में भरती जा रही थी।

चेहरे की बनावट व रंग से वह कोई आदिवासी लग रहा था। लेकिन वेष-भूषा से पढ़ा-लिखा सुसंस्कृत इन्सान, उसने गला खंखार कर खिड़की के बाहर थूका; पैरों को सीट पर रखा और खिड़की के बाहर देख बुदबुदाया, 'जब तब इन्सान धरती की पीड़ा को नहीं समझेगा तब तक कुछ नहीं हो सकता।'

आप कहना क्या चाहते हैं?

आप मेरी बात सुन तो सकेंगे पर समझ नहीं पायेंगे।

फिर भी कहने में क्या हर्ज है? वैसे आज के युग में समझते लोग कम ही हैं। सुनाने वाले और सुनने वाले ज्यादा हैं। आप सुनाइये हम लोग सुनेंगे। कुछ तो समय गुजरेगा ही। एक युवक बोला और हाथ पर खैनी मलने लगा। उसने कहना शुरू किया।

वर्षों से जमीन से जुड़े लोग आंधी में उखड़े पेड़ की भांति उखड़ गये थे। वे अपने ही घर में निर्वासित हो गये। सदियां गुजर गईं उन्हें जंगलों में काम करते। उनकी जड़ें बहुत गहरी थीं। शायद जंगल के जन्म के साथ ही उनका जन्म हुआ था। वे और जंगल साथ-साथ जन्मे थे अतीत के किसी अनाम अज्ञात क्षण में। वह जैसे नींद में बोलता जा रहा था।

पुरुष पूरे दिन शिकार की टोह में भटकते, औरतें औजार बनातीं, पेड़ की छाल, जानवरों की खाल के कपड़े सीतीं। बिना भूख के पशु उनके मित्र थे शेर,

हाथी, रीछ, बाघ, केवल बहुतायत से उपलब्ध पशुओं का वे शिकार करते। शिकार उनकी मजबूरी थी पेट की भूख से उत्पन्न मजबूरी, मनोरंजन नहीं। पेड़, झाड़ियां, जानवर, पक्षी सभी एक परिवार के सदस्य थे। जमीन पर पूरे झुंड का अधिकार होता था : हमारा जंगल, हमारा घर, हमारी ज़मीन, हमारे बच्चे, हमारी औरतें।

और हम उखड़ गये, निर्वासित हो गये।

क्यों हम ज़मीन पर हैं। हमारे घर ज़मीन पर हैं।

पड़े हुए या खड़े हुए, उगे हुए नहीं, हम जमीन के ऊपर हैं, इसलिए हमें धरती की पीड़ा का एहसास नहीं है। कहते उसके चेहरे पर ढेर सारा दर्द उभर आया जैसे वह अभी रो देगा।

'कैसे ?' एक आधुनिक श्रोता बोला।

आप पिता हैं, आप पीड़ा को महसूस नहीं कर सकते, क्योंकि आप मां नहीं हैं। मां के दिल से पूछो कि उसके सीने से बेदरदी से सन्तान को अलग करने पर कितनी पीड़ा हुई है। मौत से मरने वाले का सन्तोष हो जाता है। बिना मौत किसी को मारना हत्या है। भले ही वह पेड़ है, पशु है या इन्सान, हम अपनी धरती मां अपने भाइयों को अलग ही नहीं करते। उन्हें चीरते हैं, फाड़ते हैं, उनके अंग-अंग काट देते हैं। पेड़ों और जंगली पशुओं के मामले में हम हिटलर और ईदी अमीन से भी ज्यादा क्रूर और वहशी हैं। लेकिन इसमें इन्सान हो तो कैसे कहें। जब इन्सान इन्सान के ऊपर भी दया नहीं करता तो ये तो बेचारे पेड़ हैं। जिन्हें हम सप्राण होते हुए भी निष्प्राण मान बैठे हैं। ये सब जमीन से उखड़ जाने के कारण हुआ।

पेड़ जमीन के अन्दर उठने वाली हर लहर को आत्मसात करता है। जमीन की धड़कन के साथ उसका दिल धड़कता है। जमीन से वह शरीर के लिए रक्त प्राप्त करता है जैसे बच्चा मां की नाभि से। पेड़ हमारा सहोदर भाई है, क्योंकि दोनों का उद्‌गम स्थल एक ही है। परन्तु वाहरे मानव ! और तेरा स्वार्थ जिसने पेड़-पौधे पशु-पक्षी तो क्या अपने भाई को भी भाई नहीं समझता। पेड़ की जड़ पर चली कुल्हाड़ी भाई की गर्दन तक पहुंच गई है।

पर मेरे भाई पेड़ नहीं काटेंगे तो कहां से बनेगा फर्नीचर, कैसे बनेंगे घर कैसे मिलेगी जलावन की लकड़ी। एक श्रोता बोला।

उसने फिर खंखार कर गला साफ किया। खिड़की के बाहर झांका। गाड़ी अब खेतों के बीच से गुजर रही थी। दूर कोई गांव दिखाई दे रहा था। तालाब चांदी के एक बेडौल टुकड़े सा पसरा था।

भाई हमारी धरती माता ने, हमारे परम पिता ने, हमारी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति का प्रबन्ध किया है। परन्तु हमारी हविस की सीमा नहीं। दर असल

हमारी बुनियादी आवश्यकतायें बहुत कम हैं। परन्तु प्रदर्शन का पार नहीं। अपने मैं की सन्तुष्टि के लिए वह अनेक खेल खेलता है। पद, प्रतिष्ठा, धन, सृजन सब में प्रदर्शन के विभिन्न रूप हैं। माफ कीजिए क्या मैं पूछ सकता हूं आप काम क्या करते हैं।

'मैं टिम्बर मर्चेण्ट हूं।'

सुनते ही वह पहली बार ठठाकर हँसा। आपसे तो इस सम्बन्ध में बात करना तो कसाई से बकरा छुड़ाने जैसा ही है। लेकिन एक बात जरूर कहूंगा कि घर में चार सदस्य होते हैं। कमरे दस, बेशुमार फर्नीचर, डाइनिंग, राइटिंग ड्रेसिंग टेबल, डबल बेड, सोफा। लेकिन आप क्या कर सकते हैं? आपकी पहचान, आपकी इज्जत, आपका अस्तित्व, आपका समाज में स्थान इसीलिए है कि आप कितनी निर्जीव वस्तुओं के स्वामी हैं। आपकी चेतना, आपकी प्रतिभा, आपका चरित्र, ईमानदारी, प्रेम, करुणा, सहानुभूति का इन अमूल्य भावनाओं का कोई मूल्य नहीं और जब इन अमूल्य भावनाओं का कोई महत्व नहीं है तो धरती की पीड़ा पेड़ या पशु-पक्षियों की पीड़ा स्वयं ही महत्वहीन हो जाती है।

लेकिन मेरा निर्वासन दूसरे प्रकार का है। हम आदिवासी शताब्दियों क्या सहस्राब्दियों से जंगल पर जीवित हैं। शहद, गोंद, फल, लाख, औषधियों पर। लेकिन न जाने किस अनाम क्षण में जंगल साफ होने लगे। काम तो हमें मिला लेकिन अपनी स्वतन्त्रता, अपनी इज्जत को दांव पर लगाने के बाद। हमारी बेटियों का जंगली उन्मुक्त यौवन तथाकथित सभ्यों की आंखों में चुभने लगा। उनकी वासना की हांडी खदबदाने लगी। उन्होंने हमारी बेटियों को छला ही नहीं है उन्हें जिन्दा मौत मरने के लिए शहरों में बेच दिया। जिससे वे उनके भाइयों के लिए किराये का बिस्तर बन सकें। जंगल की आजाद हिरनी पिंजड़े की पंख कटी चिड़िया बना दी गई। आज हम हमारे ही घर में अजनबी हैं।

खिड़कियों के पार धरती पर काली बिल्ली सी रात उतरने लगी। गाड़ी की गति धीमी पड़ती जा रही थी। वह निरन्तर बोले जा रहा था।

भाई साहब आप मेरी पीड़ा को समझ नहीं पायेंगे क्योंकि आप सभ्य दुनिया से आये लोग हैं। आपको क्या पता कि इन्सानों और सीमेन्ट के जंगल में अपनी उस बहन को खोजने जा रहा है, जिसे आप लोगों ने दरिद्रों को सौंप दिया है। गाड़ी खड़ी हो गई थी। उसने अपना कम्बल उठाया और जाते-जाते कहने लगा, काश! आपको भी अपनी बहन की खोज में जंगल में भटकना पड़ता तो आप मेरी भी···उसकी आंखों में आंसू आये। वह हम सभ्यों के मुंह पर झन्नाटेदार तमाचा सा मारता उतर गया लेकिन उसे यह क्या पता कि जिस मुंह पर उसने तमाचा मारा है, उस पर कितने मुखौटे चढ़े हुए हैं।

□

संस्कृति की तलाश (रिपोर्ताज)

श्रीकृष्ण विश्नोई

जब अवकाश के दिन आते हैं, मेरे बहुत से साथी दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई जैसे महानगरों की यात्राएं करते हैं; और वहां क्रम-क्रम घर के निर्वसन होती हुई किसी केबरे नृतकी के 'कर्वज एण्ड कन्टूर्स' का दर्शन लाभ लेते हुए अपने जीवन को धन्य मानते हैं; तब मैं किसी ऐसे स्थान की यात्रा पर निकल पड़ता हूं—जहां कोई नहीं जाता। किसी समुद्र का सुनसान किनारा, जहां एक ओर दूर-दूर तक जल ही दिखाई पड़ता है और दिखाई पड़ती हैं एक दूसरी को धकियाती, भागती, खिल-खिलाती जल की लहरें, जो किनारे आकर धरती को नमन करती हैं, और एक दूसरी के गले में बाहें डाले लौट जाती हैं। ऐसे में किसी चट्टान के कौने पर बैठा मैं घंटों भर देखता रहता हूं। मेरी सांसें उन लहरों के साथ जुड़ जाती हैं, मैं उनसे अपने होने का अर्थ पूछने लगता हूं; और जब मैं वापिस आता हूं, मुझे सब कुछ एक नया अर्थ देने लगते हैं; यह घर, यह शहर इस शहर के लोग !

या फिर मैं किसी ऐसे स्थान पर चला जाता हूं, जहाँ ऊंचे और ऊंचे उठे हुए पहाड़ों के श्रृंग हैं, सनसनाती हवाओं की उंगली पकड़ कर चलते हुए छोटे-छोटे बादल हैं और अचानक किसी ओर से उठता हुआ श्यामल घटा का आंचल है। कहीं उन कठोर शिलाखण्डों के सीने से निकल कर बहता हुआ अति कोमल निर्भर है तथा चारों ओर फैली गहरी अमराई में से कोई वन्य जीव आता है, दो घूंट पानी पीने के बाद, किनारे की मुलायम मिट्टी पर बैठकर जुगाली करने लगता है। इन सब को देख कर मेरे जीवन की सारी कड़ुवाहट धुल जाती है और मैं अपने जीवन के खाते में कुछ क्षण और जोड़ लेता हूं।

परन्तु अब की बार मैं न तो किसी समुद्र के किनारे गया और न किसी पहाड़ पर। मैंने इस बार मरुस्थल की यात्रा की है। कहने को तो मैं मरुस्थल में ही जन्मा-पला हूं, परन्तु आज मैं यह कहने की स्थिति में हूं कि केवल धूल

का नाम मरुस्थल नहीं है; उसका भी अपना एक व्यक्तित्व है जैसे पहाड़, नदी और समुद्र का अपना व्यक्तित्व होता है।

वह मरुस्थल जहाँ का कण-कण एक कलात्मक इकाई है, एक संस्कृति है तथा अपने आप में एक खूबसूरत कहानी है। यहां के पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष सब की अपनी अलग कथा है, वे अभी तक भीड़ नहीं बने हैं, प्रत्येक का अपना अलग चेहरा है। वह सबल सिंह सोढ़ा की ढ़ाणी, जिसे देखकर लगता है मरुधरा ने अपने सीने-आंचल की ओट में उसे छिपा रखा है कि कहीं किसी की नजर न लग जाये। चारों ओर सोनल रेत के बड़े-बड़े टीले, उन टीलों के बीच से होता हुआ एक छोटा-सा रास्ता। ज्यों ही मैं उस घाटीनुमा रास्ते को पार करता हूं, एक लम्बा-चौड़ा समतल मैदान दिखता है और दिखता है बीस-पच्चीस घरों का एक छोटा-सा गांव—यही है सबल सिंह सोढ़ा की ढ़ाणी।

मैं जब वहाँ पहुंचा, सांझ ढल रही थी। सूरज धोरे की ओट में छिप रहा था, सांझ की उस लालिमा से धुल कर सोनल रेत सिन्दूरी आभा बिखेर रही थी। रेवड़ के गले में बँधी घंटियों की टुन-टुन, बछड़ों की बां-बूं, कुल मिलाकर ऐसा लग रहा था जैसे सारा गांव एक ताल और लय के साथ धीरे-धीरे थिरक रहा है। जो ग्रामीण मेरे साथ चल रहा था, उसके पैरों में मोटे चमड़े के जूते, घुटनों तक की धोती, शरीर पर बगल बन्दी, सिर पर मोटा साफा, एक हाथ में लाठी और दूसरे में पत्र पत्रिकाओं का एक छोटा-सा बंडल, उसकी वेश-भूषा तथा स्थिति के साथ एक विचित्र संयोग उत्पन्न कर रहा था। मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने जब पूछा कि इन्हें कौन पढ़ता है। तब अर्जुन सिंह ने उत्तर दिया, "राणी-सा।"

एक ऐसे ठेठ गांव में हिन्दी-अंग्रेजी की, पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने वाली महिला के विषय में और अधिक जानने की जिज्ञासा होना स्वाभाविक था। मैंने कंवराणी-सा के विषय में विस्तार से जानना चाहा तो फिर अर्जुन सिंह पास के टीले पर बैठ गया और अपनी चिलम भरते हुए तथा धुंए के कश खींचते हुए उसने जो कुछ बतलाया वह इस प्रकार है:

"जिसके नाम से यह गांव बसा हुआ है वह सबल सिंह सोढा, कभी इस क्षेत्र का एक माना हुआ धाड़वी था। वह दूर-दराज के धनी लोगों को लूटता और इस रेत के समुद्र में समा जाता। उस समय यहाँ सौ-सौ कोस तक कोई सड़क मार्ग नहीं था। वह अपने इस क्षेत्र के गरीबों की सहायता करता, वे लोग उसकी महानता के गीत गाते। आज भी इस क्षेत्र के लोग एक लोकगीत में गाते हैं:

"जाट-बूट को कांई लूटणों,
खेती—खड़-खड़ खाय।
अँग्रेजाँ री लूटो छावणीं,
माल मुफ्त रा खाय।"

किसान और मजदूर तो वैसे ही लुटा हुआ है, लूट का आनन्द तो अँग्रेजों की फौजी छावनियां लूटने में है, जो इस देश का शोषण करते हैं और मुफ्त का माल खाते हैं। हाँ तो उस समय सबल सिंह एक तपता हुआ सूरज था। उसका विवाह हुए तीन वर्ष हो गये थे, परन्तु अभी तक उसके कोई सन्तान नहीं थी।

जीवन का एक विचित्र मोड़। एक दिन जब सबल सिंह शिकार खेल रहा था, उसकी गोली एक गर्भवती हिरणी के जा लगी। उसने जब पास जाकर देखा वह अपनी अन्तिम सांसें गिन रही थी। उसके पेट में से बिखरे दो छोटे-छोटे बच्चे! ममता की देहरी पर ठहरी उसकी कातर दृष्टि! जिसे देख कर सबल सिंह की सांस रुक गई। उसका कलेजा फटने लगा। पता नहीं उस हिरणी की दृष्टि में क्या था कि उसने उसी समय बन्दूक फेंक दी। उस दिन के बाद न वह शिकारी रहा और न धाड़ेती। वह एक अच्छा पशु पालक बन गया। हर कोई भूखा-प्यासा उसकी ढाणी में आश्रय पाने लगा। और संयोग देखिए कि साल भर के बाद ही उसके दो जुड़वां बच्चे पैदा हुए; एक लड़का और एक लड़की।

बच्चे क्या थे जैसे चांद के टुकड़े। ऐसे खूबसूरत बच्चे बहुत कम देखने को मिलते हैं। सबल सिंह के पास अब किसी चीज की कमी नहीं थी। जमीन का तो उस समय कोई स्वामी ही नहीं था। वह खूब सारे पशु रखता। समय बीतता गया। दोनी भाई-बहन बड़े होने लगे। सबल सिंह ने उन्हें पढ़ाने के लिए शहर से एक शिक्षक बुला लिया। दोनों बच्चे साथ-साथ पढ़ने लगे, बढ़ने लगे। शरीर, मन, बुद्धि तथा व्यवहार सब दृष्टियों से वे बेजोड़ थे। सबल सिंह ही नहीं आस-पास के सब लोग भी उन्हें अपने बच्चों से भी अधिक चाहने लगे थे। दसवीं तक की शिक्षा घर पर पूरी करने के बाद पुत्र शेर सिंह को शहर पढ़ने भेज दिया और पुत्री सोनल अपने मां-बाप के पास गांव में ही रह गई।

उस छोटे से गांव में होने वाले हर शादी-ब्याह तथा तीज-त्यौहार पर सोनल उपस्थित रहती। वह बहुत ही मधुर गाती थी। सब उसके नृत्य एवं गान की प्रशंसा करते। एक दिन की बात, पास में बन रही सड़क का ठेकेदार भी 'गौरजा' के त्यौहार पर वहाँ उपस्थित था, उसने जब सोनल का घूमर नृत्य देखा तो वह अभिभूत हो उठा। उसने अपनी तरफ से इनाम भी देना चाहा,

ठाकुर साहब ने मना कर दिया। सब लोगों ने भी कहा कि "यह नाच तो माँ

गौरजा की पूजा है, पूजा का इनाम कैसा ?" यह था उन ग्रामीण लोगों का कला के प्रति दृष्टिकोण। खैर ! बात आई-गई हो गई। परन्तु ठेकेदार के मन में कुछ अटक गया।

एक दिन वही ठेकेदार जिले के कुछ प्रमुख अधिकारियों के साथ गाड़ी में आया। वे अपने साथ सोनल को पढ़ाने वाले मास्टरजी को भी लाये। उन्होंने सबल सिंह से आग्रह किया कि इस वर्ष राजधानी में होने वाले राष्ट्रीयपर्व गणतन्त्रता दिवस के सांस्कृतिक कार्यक्रम में राजस्थान के प्रसिद्ध लोक-नृत्य 'घूमर' का नेतृत्व सोनल बाई-सा करे।

ठाकुर साहब ने तो हाँ कह दी, ठकुरानी-सा पहले तो तैयार नहीं हुईं। परन्तु मास्टर जी के कहने पर उन्होंने भी बेमन से सोनल को शहर भेजा। सोनल को शहर देखने का चाव था, वह राजी-राजी चली गई। बस गई सो गई। फिर कभी लौटकर वापस नहीं आई।" चिलम का एक लम्बा कश खींचते हुए, धूंए की एक लीक-सी उगलते हुए अर्जुन सिंह बोला—"पाँच दिन के बाद मौत की खबर आई।" अपनी बात कहते-कहते वह जैसे कहीं खो गया।

सारा गाँव हा-हाकार कर उठा था। हर घर में मौत का मातम छा गया। चूल्हे-चाकी बन्द हो गये। सोनल पालित शेरी, तो आज पांच दिन से कुछ नहीं खा रही थी। दो दिन भौंकती रही और उसके बाद से चुपचाप अपनी आंखों से आंसू बहा रही थी। यह सब देख-सुन कर सबल सिंह का कलेजा फट गया। जिसके नाम से कभी अँग्रेज काँपते थे, वह बूढ़ा अपनी उस लाडली की मौत सुनकर ढह गया। अन्तिम समय अपने बेटे शेर सिंह के सिर पर हाथ रखकर उसने कहा—

"शेरू ! बेटा ! मैं तो अब पलों का मेहमान हूँ। तुम आई० पी० एस० में पास हुए हो, मुझे मालूम है कहीं अफसर बनना चाहोगे, किसी शहर में रहोगे। परन्तु···बेटा ! तब···यह घर, यह गाँव···उजड़ जायेगा। इस घर की जगह हिरण बैठेंगे, लोग बात करेंगे। यहाँ सबल सिंह सोढ़े का घर था। भूखे-प्यासे बटोही जब यहाँ से निराश, भारी कदमों से लौटेंगे, तब उनकी उस हर टूटती हुई आस और सांस के साथ मैं मरूँगा। बेटा ! मैं नहीं चाहता कि मैं बार-बार मरूँ।" सबल सिंह की आँखों में एक याचना थी।

"मुझे वचन दो शेरू ! तुम नौकरी नहीं करोगे। माना कि शहर में कुछ ज्यादा सुख-सुविधाएँ होंगी; परन्तु बेटा ! अपनी आन और बान ! इस मिट्टी की मर्जाद ! तुम तो जानते हो, जिस दुःखी नारी को यह पूरा देश शरण नहीं दे सका; उसे, इसी माँ मरुधरा ने अपनी गोद में शरण दी थी, जहाँ अकबर जैसे महान् राजा का जन्म हुआ। और फिर एक पिता ने तो अपनी आन-बान की रक्षा के लिए अपने बेटे को चौदह वर्ष वन में रहने का आदेश दिया था, मैं तो

तुम से केवल इतना ही वचन मांगता हूँ—कि तुम···अपने घर में·· अपने गाँव में रहना; इसे कभी न छोड़ना। इतिहास और संस्कृति का सुख अपने से बड़ा होता है वेटा! इसे याद रखना!" कहता हुआ सबल सिंह एक ओर लुढ़क गया। उसे धरती पर लिटा दिया गया। आँखें बन्द किये वह वड़-बड़ाया, "वेटा! सोनल किसी दुर्घटना में नहीं मरी।···वह हिरनी! मैंने उसे नहीं मारा। गलती से गोली लग गई थी। मुझे माफ़ करना द्वारिकानाथ! मैंने अपने किये का फल··। शेरू! याद रखना। अपना गाँव। अपनी मिट्टी!!" और उसकी सांस टूट गई।

अपने पिता के वचनों से बँधा, शेर सिंह, अपनी शहरी पत्नी के साथ, इसी छोटे-से गांव में रहता है। उसकी पत्नी जिसे लोग राणी-सा कहते हैं, पहले पेन्ट-बुशर्ट पहनती थी; परन्तु अव घाघरा-ओढ़ना पहनती हैं, इसी गाँव में रहती है। पति-पत्नी दोनों बहुत खुश रहते हैं। घर का टैक्टर है। खेती करते हैं, पशु पालते हैं। गाँव के सरपंच है। आज तक इस गाँव का कोई मामला कोर्ट-कचहरी नहीं गया। यह सव इनका ही प्रताप है कि गाँव में कुंआ वन गया है, विजली आ गई है। और राणी-सा ने नौ गाँव की सब स्त्रियों को पढ़ा दिया है। इस छोटे-से गाँव में आपको एक भी अंगूठे छाप नहीं मिलेगा। अच्छा अव चलते हैं।" कहता हुआ अर्जुन सिंह एकाएक उठ कर खड़ा हो गया।

मैं उसके साथ-साथ चलता हुआ सोचने लगा—यह है अपनी मिट्टी से जुड़ने का अर्थ। इस देश की प्रगति में, पढ़े-लिखे लोगों की सक्रिय भूमिका। अपनी संस्कृति का मुहावरा—

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्या:" (अथर्ववेद)

□

अपना घर

सत्या भार्गव

कॉल बेल बजी, मैंने झटपट दरवाजा खोला। दरवाजा खोलते ही 'भाभी जी' दिखाई पड़ीं। मुझे देखते ही बोलीं — "मोना, मुझे बहुत ही दुःख है कल तुम घर आयीं पर मैं नहीं मिली।" मैंने कहा—"कोई बात नहीं, आप अन्दर तो आइये।" बातों का दौर चलने लगा, थोड़ी देर बाद बातों-ही-बातों में मैंने पूछा—"कल आप कहां गई थीं?" तो बोलीं—"सुशील को देखने चली गई थी।" "क्यों—क्या सुशील आप-से अलग रहने लगा है ?" मैंने पूछा तो बहुत ही उदास मन-से बोली—"तुम तो घर की हो मोना तुम से क्या छिपाना ? आज कल की बहुएं दबकर रहना पसन्द नहीं करती। कितने लाड़-प्यार से रखा, फिर भी उसकी नाक-भौं चढ़ी रहती थी। फिर सच बात तो यह है कि ससुराल को जो बहू पराया समझे, सास-ननदों को नौकरानी समझे, उसका गुजारा भी कब तक चलेगा ? तू ही बता।"

मैं बोली—"भाभी जी, ऐसी क्या बात हुई ? उस दिन तो आप उसकी तारीफ के पुल बांध रही थीं इतनी जल्दी अलग घर बनाकर रहने लगी। सुशील ने कुछ भी नहीं कहा ?"

"अरे उसकी ही तो गलती है सच मोना अपना ही सिक्का खोटा है तो पराई बेटी की क्या कहूं। शुरू-शुरू में तो उसका व्यवहार अच्छा रहा पर धीरे-धीरे घर में सुख-शान्ति समाप्त हो गई। बात-बात में झगड़ने पर उतारू हो जाती थी। शादी हुये को चार महीने हुए हाथ में एक चूड़ी तक नहीं पहनती। कहा तो पूरे दिन खाना नहीं खाया। शाम को सुशील आया तो पता नहीं क्या सिखला दिया। बस सुशील ने अलग रहने का फैसला सुना दिया ? इन्हें भी गुस्सा आ गया सो दोनों बाप-बेटों में कहा-सुनी हो गई। सुशील को देखो सबका मोह छोड़कर झट अपना सब सामान लेकर चला गया। मेरा ही मन नहीं माना तो कल दोनों से मिलने चली गई तो कहने लगी—'देखना मम्मीजी अब मैं अपने 'इस घर' को कितना सजाकर रखूंगी।' जी में तो आया

कि कह दूं—ठीक कहती हो बहू, दहेज में आया सारा सामान एकदम नया है, फिर जो भी चीज खरीदोगी वो भी नई होगी सो घर तो अपने आप ही सज जायेगा। मेरा चालीस साल का घर है। उसे, जिस घर में तुम बहू बनकर आई थी, सजाकर रखती, पर वहां तो तुम्हारा दम घुटता था।"

"मोना, आजकल की बहुओं से कुछ कहने से भी क्या फायदा? तुम तो सब जानती हो कितने दुःख सह-सहकर सुशील को इन्जीनियर बनाया था। खैर, छोड़ो अपना दुःखड़ा कहकर थोड़ा जी हल्का कर लिया। अब चलूं?"

भाभीजी चली गईं तो मैं सोचने लगी कि आज पाश्चात्य देशों की होड़ में बहने वाले लड़के-लड़कियां अपने दायित्वों का ध्यान रखें तो नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच मधुर सम्बन्ध रह सकते हैं। जो बहू ससुराल में सुख का अनुभव नहीं करती, उसी से पूछा गया कि तुम्हारे भाभी-भैया भी तुम्हारी मम्मी से अलग रहकर 'अपना घर' बना लेते तो तुम्हारी शादी कौन करता? तुम्हारी पढ़ाई कैसे पूरी होती? तुम्हारी मम्मी अकेली किस तरह जिन्दगी के दिन काटती? तुम्हारे पिता तो बचपन में ही दुनिया से कूच कर गये थे?"

बहुत देर तक सोचती रही। जमाने की हवा को दोष देती उठ खड़ी हुई और घर के काम-काज में जुट गई।

□

कैसे भूलूँ

दयावती शर्मा

बात सन् 1971 की है। उस समय मैं लोकमान्य तिलक प्रशिक्षण विद्यालय में बी० एड्० कर रही थी।

विदाई समारोह था उस दिन। सामान एक कमरे में रक्खा था। विद्यार्थी-गण भाग-दौड़ में लगे हुये थे। मैं उस भंडार घर में थी। किसी कार्यवश बाहर गई। सामने ही मेरे गुरु वर्मा साहब मिल गये।

"दयावती जी वहां कौन है ?" "जी, सूआलाल जी को छोड़कर आई हूँ।" गुरु जोर से ठहाका लगाकर हंस पड़े। "अरे ! दयावती जी वह क्या देख-भाल करेगा। एक तो सूआ और उस पर भी सूए का लाल।" पुन: हँस पड़े। आज भी वह हँसी हृदयपटल पर अंकित है।

□

रोमांस

पुष्पलता कश्यप

[मंच के मध्यभाग में पड़ी बेंच पर एक लड़का और लड़की, जो प्रेमी-प्रेमिका हैं आमने-सामने बैठे हैं। पृष्ठभूमि में, पर्दे पर, पार्क का एक एकांतिक प्रकोष्ठ चित्रित है। केवल दृश्य प्रकाशित होता है, शेष अन्धेरा है। वातावरण में, अभिनय के साथ वर्तालाप के स्वर उभरते हैं। समुचित रंगों की झिलमिल प्रकाश व्यवस्था, और स्वरों के उतार-चढ़ाव के माध्यम से अभिव्यक्ति को मूर्तरूप दिया जाता है।]

लड़का : आपके मिजाज कैसे हैं ?

लड़की : मेरे पास एक ऑटोमेटिक कैमरा है।

लड़का : ठीक है, मैं तुम्हारा एलबम देखूंगा।

लड़की : वह···वह···वह।

लड़का : वह, वह क्या ?

लड़की : मेरा मतलब है वह फिर कभी······

लड़का : क्यों, क्यों, क्या मैं उल्लू का पट्ठा हूं ?

लड़की : नहीं, नहीं, तुम शैतान की आंत हो।

लड़का : अच्छा, ठीक है···।चुप्पी।

...   .

लड़का : हां तो अब क्या बात करें ?

लड़की : बात ! क्या करें ?

लड़का : तुम्हारे पिताजी की तबीयत कैसी है ?

लड़की : खास ठीक तो नहीं। हां, तुम्हारे लिए कह रहे थे—लड़का ठीक नहीं है।

लड़का : तुम्हारे पिताजी के लिए मैं कुछ करूं ?

लड़की : नहीं, उन्हें भाई साहब देख रहे हैं।

लड़का : चलो ठीक है बाबा !
लड़की : यह बाबा-बाबा क्या शुरू कर दिया ?
लड़का : हम आज मिले क्यों थे—कुछ याद है ?
लड़की : हां याद आया—पिताजी को मालूम हो गया है—तुम शराबी हो।
लड़का : क्या मैं खराब आदमी हूं ?
लड़की : मुझे नहीं पता, पर तुम्हें क्रोध बहुत आता है।
लड़का : इसलिए कि तुम्हारा मन साफ नहीं है।
लड़की : ओह यू शट-अप !
लड़का : शट-अप की बच्ची, तुम सचमुच स्वार्थी हो, मैं हजार बार कहूंगा।
लड़की : तुम···तुम···तो बिल्कुल बदतमीज हो।
लड़का : मैं बदतमीज हो सकता हूं।

··· ······ ···

लड़का : अच्छा बताओ, तुमने नाव में बैठने से इन्कार क्यों किया ?
लड़की : मुझे पानी से डर लगता है।
लड़का : तो फिर कसम लो— डोंगी की सवारी कभी नहीं करोगी।
लड़की : मुझे वह डोंगी पसन्द आयेगी जिसकी शक्ल तुम से मिलती हो ?
लड़का : डोंगी की आकृत्ति मुझ से नहीं मिल सकती— मैं स्त्रीलिंग नहीं हूं।
लड़की : यदि तुम मुझसे सहमत हो जाते हो, तो झगड़ा खत्म हो जायेगा।
लड़का : मुझे नहीं करना झगड़ा खत्म।
लड़की : नहीं करना, तो मत करो।

··· ··· ···

लड़का : खैर छोड़ो। तुम्हें शराब का स्वाद पता है ?
लड़की : नहीं तो, पर तुमने यह सवाल मुझ से क्यों किया ?
लड़का : इसलिए कि तुम्हारा और शराब का स्वाद एक-सा है।
लड़की : तुम दंभी हो—कवियों ने नारी को नशा तो कहा है, स्वाद की बात किसी ने नहीं कही।
लड़का : मुझे तो घसियारा समझ लो, पर सच्ची कहता हूं।
लड़की : टुच्चेपन की हद है, यह।
लड़का : हां मैं टुच्चा हूं, टुच्चा और एकदम गलीज आदमी।
लड़की : नाराज मत होना, मुझे कुछ सही पता नहीं है।
लड़का : पता नहीं है, फिर अनर्थ क्यों कर रही हो ?
लड़की : एक बात जरूर है—मौसम आज साफ है ?
लड़का : मौसम साफ है तो क्या करें ? तुम तो जालिम हो।
लड़की : तुम्हारा कोई प्रणय-प्रसंग है ? सुनाओ ?

लड़का : हा···हा···प्रणय-प्रसंग, और मेरा ? क्यों, क्या मैं सचमुच उल्लू का पट्ठा हूं।
लड़की : नहीं तो, लगते तो नहीं हो ?
लड़का : क्या मैं हमेशा कड़वी चीज़ को प्यार करता हूं ?
लड़की : तुम व्यक्ति-सापेक्ष हो।
लड़का : व्यक्ति-सापेक्ष नहीं, शराब-सापेक्ष। मेहरबानी करके बताइये मैं शराब को अपने होंठ सौंप सकता हूं ?
लड़की : तुम जल्दी से सिगरेट सुलगालो, बस !
लड़का : क्यों ? क्यों, ऐसा क्यों ?
लड़की : मस्तिष्क में उद्विग्नता बढ़ रही है !
लड़का : क्यों, क्या बात हुई।
लड़की : पिताजी के बारे में—भाई साहब को रिपोर्ट देनी है, ऑफिस में।
लड़का : अच्छा ठीक है, तुम पहले पिताजी का काम करो।
लड़की : यहीं मिलेंगे, इसी वक्त, कल।
लड़का : ठीक है, पिताजी का काम पहले ही निपटा देना।
[दोनों ओर हाथ हिलते हैं, और बीच की दूरी बढ़ती जाती है।

—दृश्यालोप—

□

मिट्टी

अरनी रावर्ट्स

पात्र

शमीम : नौजवान जिसे देश की मिट्टी से प्यार है।
सुलतान : जो देश को पराया समझता है—शमीम का चचेरा भाई।
अमृत : शमीम का दोस्त···समाज सेवी।
अनवर खां : शमीम के पिता···कट्टर मुसलमान···जिन्हें केवल मुसलमानों से प्यार है।
अख्तरी : अनवर खां की पुत्री···हिन्दुस्तान से प्यार करने वाली एक जागरूक युवती···

प्रथम दृश्य

(अनवर खां···जो लोहे के एक बड़े व्यापारी हैं···अपने कमरे में बैठे उर्दू की एक पत्रिका पढ़ रहे हैं···सहसा शमीम अपने मित्र अमृत के साथ प्रवेश करता है···)

अमृत : नमस्ते चाचाजी···!
अनवर खां : नमस्ते···बेटे···नमस्ते, कहो कैसे हो ? पढ़ाई वगैरह कैसी चल रही ?
अमृत : ठीक, चाचा जी···अच्छी चल रही है···वैसे इन दिनों हम कौमी एकता पर एक ड्रामा कर रहे हैं···शमीम और मैं दोनों ही कॉलेज में होने वाले ड्रामे में भाग ले रहे हैं।
शमीम : और अब्बा···मजे की बात तो यह है कि अमृत तो एक मुस्लिम लड़के की भूमिका में है और मैं एक हिंदू लड़के की भूमिका में।

(अनवर खां के चेहरे पर उलझन और नफरत की रेखायें उभरती हैं।)

अनवर खां : ऐसा क्यों ? यह उल्टी गंगा क्यों ? यह अमृत क्या जाने मुस्लिम तहज़ीब-तरीकों को ?

अमृत : चाचा जी आपका यह ख्याल ग़लत है···शमीम के साथ व अन्य मुस्लिम दोस्तों के साथ रहते हुए मुझे मुस्लिम तहज़ीब व तौर-तरीकों का काफी कुछ ज्ञान हो गया है।

शमीम : और फिर अब्बा···यही तो कौमी एकता है कि हम एक-दूसरे के मजहबों व संस्कृतियों को मान-सम्मान दें और मिल-जुलकर रहना सीखें—

अनवर खां : (व्यंग से) कौमी एकता···? एकता ही होती तो क्यों होते ये मज़हब के झगड़े ? क्यों होते ये दंगे-फसाद ? क्यों हिन्दू-मुस्लिम एक-दूसरे के खून से अपने हाथों को रंगते ? नहीं···नहीं···यह कौमी एकता नहीं ··जहाँ हिन्दू-मुस्लिम हैं वहाँ कौमी एकता हरगिज संभव नहीं है। (भावावेश में इधर-उधर घूमने लगते हैं तेजी से।)

शमीम : कौमी एकता छिन्न-भिन्न हो रही है इसके भी एक कारण हैं··· और वे हैं हमारे स्वार्थ···मज़हब की अंधी दौड़···अब्बा हज़ूर न मुस्लिम धर्म यह सिखाता है कि दूसरे का गला काटो और न हिन्दू धर्म यह सीख देता है···लेकिन कितनी अजीब बात है कि हम लोग धर्म की आड़ में ही खून बहाते हैं···और अपने दामन को अपने ही भाइयों के लहू से रंग लेते हैं···

अनवर खां : तुम जज़्बातों में बह रहे हो बेटे···हमें मज़हब के उसूलों पर भी चलना होता है···खुदा का खौफ भी रखना पड़ता है···

शमीम : (व्यंग से) चाहे खुदा के खौफ रखने में किसी की गरदन ही क्यों न काटनी पड़े···

अनवर खां : (चीखकर, गुस्से से) चुप हो बदज़ात···तुझ पर खुदा का कहर बरसेगा···तू मेरा बेटा नहीं···मज़हब और दीन का दुश्मन है··· शैतान है तू ··

अमृत : चाचा जी·· इतना क्रोध न करें···शमीम मज़हब का अपमान नहीं कर रहा है···वह तो मिलकर···साथ-साथ काम करके··· दोनों धर्मों के मानने वालों को एक सूत्र में पिरोने की बात कर रहा है।

अनवर खां : चुप रहो तुम···मैं तुमसे नफरत करता हूं···तुम काफिर हो··· तुम्हीं ने बरगलाया है मेरे बेटे को। वरना वह ऐसा बदतमीज नहीं था···ऐसी जुर्रत नहीं थी उसकी।

शमीम : अब्बा हुजूर···आपको मेरे दोस्त की बेइज्ज़ती करने का कोई हक़ नहीं है···आप अपने झूठे उसूलों के लिये लकीर को पीटना चाहते हैं।

अनवर खां : (गुस्से से तमतमा उठते हैं और एक जोरदार तमाचा शमीम के मुंह पर जड़ देते हैं) कमीने···बदजात···नीच···कितना अच्छा होता जो मैं पैदा होते ही तेरा गला घोट देता · तू मेरे नाम पर कलंक है·· जा दूर हो जा मेरी नज़रों से··

शमीम : ठीक है अब्बा हुजूर। मैं जा रहा हूं···लेकिन एक दिन आप महसूस करेंगे कि हम ठीक राह पर हैं·· और जब तक हम आपस की दूरियां नहीं हटाएंगे···दंगे-फ़साद और कत्ल होते रहेंगे, छोटी-छोटी बातों पर···और हम ने भी कसम उठाई है कि कौमी एकता स्थापित करेंगे।

(अनवर खां गुस्से से उन्हें जाते हुए देखते रहते हैं।)

दूसरा दृश्य

(अनवर खां का मकान···रात का समय है···अनवर खां और सुलतान बैठे हुए गुपचुप बातें कर रहे हैं···उनके चेहरों-से लगता है कि उनके इरादे नेक नहीं हैं।)

सुलतान : धीरे बोलिये अंकल···दीवारों के भी कान होते हैं।

अनवर खां : हम कानों को भी काट देते हैं···हमारे इरादे फ़ौलाद की तरह मजबूत हैं।

सुलतान : कहिए···इस वक्त याद करने का क्या मकसद है?

अनवर खां : आजकल तुमने यह कौमी एकता वाली बात सुनी है? हिन्दुओं का मजहब कुछ, हमारा कुछ और·· भला फिर कैसी कौमी एकता? इस अमृत नाम के छोकरे ने शमीम का दिमाग खराब कर रखा है · सुलतान, इस छोकरे को ठिकाने लगा दो·· और एक दंगा शुरू करा दो।

सुलतान : दंगा शुरू कराना क्या मुश्किल काम है···कल यह काम हो जायेगा और इसी बीच उस छोकरे अमृत का भी सफाया···

अनवर खां : मैं यही चाहता हूं···दंगा होगा तो यह कौमी एकता वाली बचकानी बातें सामने नहीं आएंगी · आज शमीम इन हिन्दुओं के साथ मिलकर काम कर रहा है · कल हमारे और मुस्लिम नौजवान ये काम करेंगे···हमारी अपनी मजहबी तालीमें धूमिल पड़ती जायेंगी।

(अख्तरी का प्रवेश · हाथ में किताबें लिए···कॉलेज से आई है।)

अनवर खां : (चौंककर) बेटी अख्तरी आ गयीं तुम ? सुलतान आये थे, मैं इनसे कुछ बातें कर रहा था।

अख्तरी : (किताबें टेबल पर पटकते हुए) और वे कुछ बातें मैंने भी सुन ली हैं···और जानकर मुझे सख्त अफसोस है कि मेरे अब्बा···एक निहायत शर्मनाक काम कर रहे हैं···आप जानते हैं कितने निरीह लोगों की जानें जाएंगी और सुलतान जैसे लोग उस आग को लगाकर हाथ सेकेंगे।

अनवर खां : यह तू क्या कह रही है बेटी···मैं तो मज़हब।

अख्तरी : हर बार वही मज़हब···मज़हब क्या जान लेने का हुक्म देता है मज़हब के लिए ग़ैर-मज़हबी काम करके आप अपने सिर पर अंगारे रख रहे हैं अब्बा।

सुलतान : आजकल की पढ़ी-लिखी छोकरियां···क्या जाने कि मज़हब क्या होता है ? इनकी पढ़ाई ने ही इनकी जुबानें लम्बी कर दी हैं और दिमाग बिगाड़ दिये हैं···

अख्तरी : चुप रहो···तुम जैसे आवारा को तो मुझे भाई कहते शर्म आती है···तुम क्या जानो पढ़ाई क्या होती है ? तुम्हारे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है···याद है उस दिन कॉलेज की लड़कियों ने तुम्हारी क्या पिटाई की थी···जो मैं न बचाती तो हज़रत का हुलिया पहचानने में नहीं आता···!

(सुलतान खिसिया जाता है बुरी तरह।)

अनवर खां : तुम जाओ अख्तरी···हमारा समय बरबाद न करो।

अख्तरी : अब्बा हुजूर···एक बात आप ध्यान से सुन लीजिए, आप लोग जो कुछ सोच और कर रहे हैं वह बिल्कुल गलत है···अमृत और शमीम भाई···एक मिशन लेकर चल रहे हैं·· सभी कौमों को एकता में बांधने का · मेहरबानी करके उनके इरादों और हौसलों को नाकाम करने की कोशिश न करें।

सुलतान : ऐसे छोकरों को मैं चुटकी में मसल सकता हूं·· पर थोड़ा सवाल शमीम का है इसलिए दूसरे ढंग से काम लेना।

अख्तरी : सुलतान···शमीम और अमृत के साथ जनमत है··हौंसले हैं, पक्के इरादे हैं, तुम्हारे पास क्या है ? चन्द गुण्डों की फौज···जो कभी भी पुलिस की गोली का निशाना बन सकते हैं।

सुलतान : यह तो वक्त बतायेगा बहन अख्तरी कि ऊंट किस करवट बैठेगा।

अगर अमृत के लिए ज्यादा ही दर्द है दिल में तो उसके घर जाकर कह दो कि उसकी अरथी और क्रिया-करम का इन्तजाम कर लें।

अख्तरी : अगर अमृत को कुछ हो गया सुलतान···तो लोग तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे···वह लोगों का चहेता है···उसके एक इशारे पर लोग जान भी लुटा सकते हैं।

(सुलतान जोर का अट्टहास करता है।)

अनवर खां : (गम्भीर स्वरों में) खबरदार अख्तरी···जो तुमने हमारी बातें किसी को बताईं और सुलतान के प्लान का जिक्र किसी को किया ! यह मेरा हुक्म है तुम घर के बाहर कदम नहीं रखोगी (सुलतान से) आओ सुलतान · हमें बहुत काम करने हैं ··

(सुलतान और अनवर खां का प्रस्थान)

अख्तरी : हे अल्लाह···ये क्या इन्सानियत है ? एक ही घर की छत के नीचे···दो तरह के इन्सान हैं···एक सभी कौमों को एक सूत्र में पिरोना चाहता है, तो दूसरा···उस धागे को काट देना चाहता हैं···जो उनको मिल-जुलकर प्रेमपूर्वक रहने देना नहीं चाहता। अल्लाह, अमृत की रक्षा कर···। मुझे कुछ करना ही होगा··· मैं बुर्का पहनकर बाहर जाऊंगी···शमीम भाई और अमृत को आगाह करने के लिए···क्या पता रात को ही ये दंगा करवा दें···।

तीसरा दृश्य

(सुबह का दृश्य—अनवर खां बेचैन हैं—कमरे में बेचैनी-से इधर-उधर घूम रहे हैं। सुलतान का प्रवेश हाथ में अखबार लिए···।

अनवर खां : तुम ?···क्या खबर है ?

सुलतान : सबसे बड़ी खबर तो मालूम हो ही गयी होगी कि दंगा करवा दिया है कल रात शहर में···नफ़रत के शोले भड़काने में वक्त ही क्या मिलता है ? कई जगह मेरे साथियों को हिन्दुओं से डट-कर मुकाबला करना पड़ा··· इतनी रिस्क इसलिए ली कि अमृत मेरा शिकार था। कर्फ्यू के बावजूद···हम लोग उसे मारने की फिराक में घूमते रहे, पर हर बार शमीम उसके साथ था···वैसे मैं कासिम को लगा आया था उसके पीछे ··

अनवर खां : चलो यह सब तो ठीक है···पर यह बताओ कि अख्तरी कहां

है ? मुझे उसकी फिकर खाये जा रही है। इस दंगे में कहीं वह फंस तो नहीं गयी है। मुझे फिकर हो रही है उसकी···कितना समझाया था उसे···।

सुलतान : जायेगी कहां···? अपने ही किसी रिश्तेदार या उसकी किसी सहेली के घर होगी···वैसे अखबार में एक खबर छपी है कि रात एक युवती को गुण्डे उठाकर ले गए·· पुलिस ने पीछा भी किया···पर गुण्डे उसे लेकर भागने में सफल हो गये···!

अनवर खां : हे अल्लाह···कहीं वह अख्तरी तो नहीं थी···उसकी हिफाजत करना···

(शमीम का प्रवेश···कपड़े व बाल अस्त-व्यस्त हो रहे हैं··· आंखें लाल हो रही हैं।)

शमीम : (तैश में) एक तरफ दंगे भड़काते हैं आप · अपने वतन की इस मिट्टी के साथ दग़ा करते हैं···कौमी एकता के दामन में आग लगाते हैं···फिर अपने नापाक होंठों पर अल्लाह का नाम लाते हैं अब्बा अगर आप ये दंगे नहीं करवाते तो हमारी अख्तरी किसी मुसीबत में फंसती···उसे अपने को मुसीबत में डाल कर··· हमें खबर दी। पुलिस को इत्तला दी···तभी तो ये दंगे नाकाम रहे···और शीघ्र ही कर्फ्यू लगा दिये गये ! लेकिन अख्तरी···

अनवर खां : (घिघियाते हुए) क्या हुआ शमीम अख्तरी को···मेरी बेटी को, बताओ जल्दी बताओ मेरा दिल धड़क रहा है·· मेरी सांसें रुक रही हैं···

शमीम : वो आपके किराये के गुण्डे थे न ! जिन्हें आपने आगजनी, बलात्कार और दंगों के लिए भेजा था···वे ही अख्तरी को उठा ले गये···अखबार में जो खबर छपी है, वह युवती अख्तरी ही थी···।

अनवर खां : अख्तरी··· मेरी बेटी···यह मैंने क्या किया ? मैंने साफ-सुथरे आसमान पर थूकना चाहा था, पर थूक मेरे मुंह पर ही आकर गिरा···।

शमीम : आपको बरगलाने वाला और कोई नहीं यह आस्तीन का सांप है सुलतान ··कमीने ··निकल जा यहां से···(जोरदार झन्नाटे-दार चांटा सुलतान के गाल पर बज उठता है।) जा, पुलिस तेरा इन्तजार कर रही है बाहर···बच आप भी नहीं सकेंगे अब्बा··· काश···आपने इस मिट्टी से प्यार किया होता···

अनवर खां : मैं बहुत बुरा हूं शमीम बेटे पर एक बार बता दो मेरी अख्तरी

कहां है ? किस हाल में है ? जिन्दा भी है या नहीं ?

शमीम : दुआएं दीजिए उस अमृत को जिसने गुण्डों से अख्तरी को बचाया…खुद बुरी तरह घायल हो गया, पर अख्तरी की उसने रक्षा कर ली…जिस शख्स को मरवाने के लिए आपने सुलतान को लगाया…उसी ने आपके घराने की इज्जत को बचाया…अख्तरी यहीं है…बाहर… पर अमृत अस्पताल में है ऐमरजेंसी वार्ड में…हालत खराब है उसकी…

(अख्तरी का प्रवेश)

अनवर खां : अख्तरी…मेरी बेटी…मेरी लख़्ते जिगर…आ मेरे गले से लग जा…और इस सिर फिरे बाप को माफ कर दे… अब मेरे दिल को संकून पहुंचा है…शमीम, अमृत और तुम…जीत गये, मैं हार गया। तुम सच्चे निकले…मैं झूठा साबित हुआ। मैंने देश की मिट्टी का अपमान किया…इस बुढ़ापे में मेरी अक्ल सठिया गयी थी…मेरे बच्चों मुझे माफ कर दो…मुझे उस फरिश्ते से मिलवा दो, अमृत से …मैं उससे माफी मांगना चाहता हूं…

(पुलिस इन्सपेक्टर का प्रवेश)

इन्सपेक्टर : कौमी एकता भंग करने तथा दंगे करवाने के जुर्म में मैं आपको गिरफ्तार करता हूं अनवर साहब…।

अनवर खां : मैं कबूलता हूं कि मैं आपका मुजरिम हूं…लेकिन एक मेहरबानी कीजिए…मुझे अस्पताल ले चलिए…मैं अमृत बेटे से जब तक माफी नहीं मांग लेता तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगा…चाहे कितना ही पैसा क्यों न लग जाये…उस फरिश्ते को बचाना ही होगा…

इन्सपेक्टर : ठीक है…हमें कोई आपत्ति नहीं है।

अनवर खां : बेटे शमीम और बेटी अख्तरी…मेरी आंखों से पर्दे हट गए हैं…जेल से लौटने के बाद इस कौमी एकता का झंडा मैं भी थामूंगा, क्योंकि मिट्टी के लिए मेरा फर्ज अब जाग उठा है…आओ चलो अमृत के पास चलते हैं… (सबका प्रस्थान)

पटाक्षेप

जाति बह गई

दुर्गा भण्डारी

पात्र-परिचय

पिता	:	सेठ
मां	:	सेठ की पत्नी
राजू	:	सेठ का पुत्र
रीता	:	राजू की मित्र
राकेश	:	राजू का मित्र

पिता : अरे सुनती हो, राजू का रिश्ता पक्का कर दिया है।

मां : हे भगवान तुम्हारे मुंह में लड्डू। कितने दिन हो गये। मैं इसी समाचार के लिये आतुर थी।

पिता : जब लड़का डाक्टरी में पास हो गया तो इस शुभ कार्य में देरी क्यों की जाय ?

मां : (उत्सुकता से) हां लेने देने की बात तो की होगी ? क्या-क्या देंगे ?

पिता : अरे यह पूछो कि क्या नहीं देंगे ? आज तक इसकी पढ़ाई पर हुआ सारा खर्च और रोकड़ के रूप में पचास हजार।

मां : अच्छा सामान क्या-क्या देंगे ? सोना-वोना कितने तोला देंगे ?'

पिता : सोना पचास तोला। सामान की लिस्ट तो इतनी लम्बी है जैसे टी० वी०, स्कूटर, फ्रिज आदि मुझे मौखिक तो सारी याद नहीं। बाराती को एक जापानी घड़ी। आखिर डाक्टर की बारात है, ठहरने को तो फाईव स्टार होटल की व्यवस्था तो होगी। बस सब तै हो गया।

मां : अरे हां-ऽ राजू को आगे की पढ़ाई के लिये अमेरिका भी तो भेजना है। उसका क्या कहा ?

पिता : हां-हां वह खर्च भी बाद में वे ही वहन करेंगे। वे लड़के को अमेरिका भेजेंगे।

मां : पर राजू को तो पूछ लेते ?

पिता : इसकी क्या आवश्यकता है, लड़के तो कोरी लड़कियों में रिझते हैं। सो उनकी लड़की तो हुस्न परी है सुन्दर, सुशील, शिक्षित सम्पन्न सब है। भला वो क्यों मना करेगा ? अरे मैं उसका बाप हूं उसका बुरा तो करूंगा नहीं।

मां : फिर भी आजकल के छोरे हैं जी। उनका मन भी तो जान लेना चाहिये।

पिता : अरे मैंने बड़ा सोच-समझकर कार्य किया है। कोई भी किसी प्रकार की कमी नहीं निकाल सकता तो वो क्या कहेगा। फिर भी तुम चाहो तो पूछ लेना। मना तो कर नहीं सकता।
(राजू का प्रवेश)
(आड़ में बातें सुनकर)

राजू : राजू मना कर सकता है और कर रहा है। यह शादी नहीं होगी।

पिता : (चौंककर) लेकिन क्यों ?

राजू : मैं शादी में दहेज न लेने की कसम खा चुका हूं और दूसरा मैं अपनी पसन्द की लड़की से शादी करूंगा।

पिता : तू होश में तो है, अरे इतना पैसा लगाकर पढ़ाने का अर्थ ही यही था कि अच्छा दहेज आयेगा और आज तू दहेज नहीं लेने को कह रहा है। समाज में मेरा इतना नाम है और बाराती तथा बहू को कुछ न मिला तो लोग क्या कहेंगे ?

राजू : पापा आपको बहू चाहिये या दहेज ?

पिता : मुझे दोनों चाहिये बेटा।

राजू : मुझे केवल बहू चाहिये। वह भी मेरी पसन्द की यानि मैं रीता से शादी करूंगा यह मेरा अन्तिम निर्णय है।

पिता : (चीखकर) राजू यह क्या कह रहा है, मेरी जबान कट जाए पर जबान नहीं जा सकती मैंने उनसे रिश्ता तय कर लिया है।

राजू : मैं भी आपका ही बेटा हूं, मैं भी रीता को जबान दे चुका हूं, बदल नहीं सकता।

पिता : किन्तु मैंने वचन दिया है इसी माह में शादी होगी।

राजू : आपने मुझसे पूछे बिना यह गलती क्यों की। शादी मुझे करनी है मुझे तो पूछते।

मां : राजू तू क्या पागल हो गया है? अरे तुम्हें इतना पढ़ाया इस-लिए कि तू हमारी नाक कटाये।

पिता : अगर तू उस रीता से शादी करेगा तो यह दरवाजा तुम्हारे लिये बन्द है, समझा?

राजू : जी हां समझा अच्छी तरह।

मां : (पास आकर) बेटा रीता की जाति क्या है, वह तो अपनी जाति की नहीं लगती। मद्रासी जैसी लगती है मुझे तो।

राजू : मां क्या मद्रास भारत में नहीं वहां इन्सान नहीं रहते। उसकी जाति मुझे पता नहीं। हम सब भारतीय हैं यही जाति है।

पिता : लो सुन लो लाडले की बातें जिसकी जाति पता नहीं, उस कल-मुंही से साहबजादे शादी फरमा रहे हैं।

मां : (चीखकर गुस्से से) राजू कान खोलकर सुन ले हमारा धर्म नष्ट करने को अगर तूने उससे शादी की तो मैं जहर खा लूंगी हां (रोती है)।

राजू : जहर आपको कहीं मिलेगा नहीं।

मां : (रोती है) हे भगवान आज यह दिन देखने को ही मैंने इसे इतना पढ़ाया।

राकेश : राजू-राजू (अन्दर आकर सहम जाता है) अरे आज क्या बात है? मां आप रो क्यों रही हैं?

मां : (रोते-रोते) इस राजू से ही पूछो यह तो हमारी नाक कटाने बैठा है। अरे एक ही लड़का है वह भी ऐसा निकला हमारे तो भाग्य ही फूट गये। यह रीता से शादी करेगा रीता से (रोती है)।

राकेश : तो क्या बुरा है? वो अच्छी लड़की है। मैं जानता हूं यह जोड़ी खूब जमेगी।

मां : हां-हां क्या बुरा है अरे उसकी जाति भी पता है किस जाति की है। हमारे धर्म-कर्म सब नष्ट करने पर तुला है (रोते-रोते

चली जाती है)।

(राजू और राकेश अकेले रहते हैं। राजू के पास आकर आश्वासन से पीठ थपथपाकर)।

राकेश : राजू समस्या बड़ी जटिल है पर चिन्ता मत कर पापा व मां को बिना दहेज तो कैसे भी मना लेंगे पर जाति (गहरी साँस लेकर)।

राजू : मैं भी इसी बात से परेशान हूं। राकेश कुछ तो करना पड़ेगा।

राकेश : (एकदम चौंककर) आया (कुछ सोच के) राजू एक आइडिया आया (खुशी से उछल पड़ता है) और कान में कुछ कहता है।

राजू : (सुनके एक बार हंसता है) पर मां मानेगी नहीं।

राकेश : वो तुम सब मुझ पर छोड़ो बस तुम तो इस नाटक की तैयारी करो। यह पुराने लोग हैं इनको मनोवैज्ञानिक ढंग से समझाना पड़ेगा, इनका विश्वास देवी-देवता साधु-सन्तों की बातों में बहुत होता है (हंसता है उठते-उठते हाथ मिलाता है कहते हुए) अच्छा शुरू हो जा शुरू।

(प्रस्थान)

(राजू अकेला कमरे में वाक्य को दोहराता है)

जाति-पांति पूछे नहीं कोई।

हरि को भजे सो हरि का होई॥

(मां पिता का एक साथ प्रवेश)

मां-पिता : (एक साथ) बेटा एक बार ठंडे मन से और सोच लो हमारी भी इज्जत की बात है तुम्हारे जीवन की बात है।

(दोनों फिर उसे कहते हैं)

बेटा सुनो रीता का धर्म-कर्म जाति, प्रान्त, संस्कृति सब हमसे भिन्न है वह हमारे साथ नहीं रह सकती।

(रीता का प्रवेश)

(मद्रासी टोन में हिन्दी बोलती है)

रीता : राजू आज तुम लाइब्रेरी क्यों नहीं आया ?

अमने उदर तुमारा बोत वेट किया।

मां : तू तो आप ही रीता हैं ?

पिता : मैडम आपकी जाति क्या है ?

रीता : ओ नमस्ते जी आप अमारा जाति पूछता मतलब अमारा कास्ट ?

मां : हां-हां तुम्हारी जाति बताओ ।

रीता : मां जी अमारी जाति का स्टोरी बोत दुखी है । अमारा कोई भी जाति नहीं होता अब । पहले अमारा एक बहुत उच्च जाति होता था पर अब वो नहीं रहा ।

पिता : क्या मतलब ।

रीता : मतलब अमारा जाति बेह गया अब सारा स्टोरी समझाता है । एक बार अमारा दादी-दादा मां सब उधर संगम पर सनान करने को गया उदर जैसे ही अमारा दादा संगम में जाता है न ? संगम बोत पवित्र होता है । उसमें उतरा कि अचानक अमारा जाति बह गया ।

पिता : क्या बकती है लड़की ।

मां : सुनो तो सही यह क्या कह रही है ।

रीता : (रोते हुए डरते-डरते) सच मां जी अमारा दादा बहुत रोया । चिल्लाया बचाओ-बचाओ अमारा जाति बहे जाती है । हम लुट गये हम बिना जाति के हो गये । फिर बहुत सारे मछुए आये जाल डाला पर अमारी जाति नहीं मिला । मां जी (रोती हुए कहती है) अमारी जाति डूब गया । अम बिना जाति का हो गया । अम को लगा अमारी कोई जाति नहीं होती, कैसे पहचानेगा ।

(नेपथ्य से आवाज)

[नेपथ्य से—नारायण-नारायण कोई बात नहीं बच्ची तुम्हारी जाति डूब गई तो अब तुम अपने अच्छे कार्य और गुणों से संसार की महानतम मानव जाति की हो गई हो, भगवान शंकर की भी कोई जाति नहीं थी । पर अपने अच्छे कार्य और गुणों से वह आज भी पूजे जाते हैं । अच्छे काम और गुणों से इंसान महान मानव जाति का होता है, नारायण-नारायण)

पिता : यह क्या चमत्कार है ?

राकेश : पापा आपके पूजा-पाठ धर्म-कर्म से खुश होकर भगवान ने आपको एक गलती से बचाया है और यह चमत्कार दिखाया है ।

मां : सच, काम से ही आदमी बड़ा और महान होता है जाति से नहीं।

राजू : तो चलो मां हम भी गंगा स्नान को चलते हैं और अपनी जाति बहादें ताकि हम भी एक महान मानव जाति के सदस्य बन जायें।

पिता : रीता तुमने मेरी आंखें खोल दीं बेटी, जाति-पांति पूछे नहीं कोई हरि को भजे सो हरि को होई।
आज से तुम हमारी ही जाति की हो।

रीता : (चरण छूती है)

पिता मां : आशिष को हाथ उठाते हैं।

राजू-राकेश : (गले मिलते हैं)

राजू : मान गये गुरु।

□

भगवान का न्याय

रमेश भारद्वाज

पात्र-परिचय

सास : एक अधेड़ स्त्री
बहू : एक नव युवती
पड़ौसिन : एक वयस्क स्त्री

दृश्य

[किसी गृहस्थ का सामान्य घर। पर्दों पर कुछ चित्र कलैण्डर लगे हुए हैं। एक ओर कृष्ण का चित्र है। और एक ओर कुछ बर्तन रखे हुए हैं कुछ दूर कुछ कपड़े तह किये हुए रखे हैं।

पर्दा हटने पर सास मंच के केन्द्र से कुछ हटकर बैठी हुई एक कपड़ा सीती हुई दिखती है। बहू कुछ बर्तन लेकर एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर जाती दिखती है, लगभग बीच में उसके हाथ से कुछ बर्तन गिर जाते हैं। वह सहमी हुई सास की ओर देखती है। सास बर्तनों की ओर देखती है।

सास : हां फोड़ दे, फोड़ दे; तेरे बाप ने बहुत बर्तन दिये है न ? जब देखो तब कुछ-न-कुछ नुकसान करती रहती है। मायके में कुछ देखा किया तो है नहीं जो चीजों की सार सम्हाल जाने। भगवान ने भी कैसी निकम्मी बहू दी है।

(बहू बर्तन उठाकर चली जाती है। सास कपड़ा सीती रहती है, दो मिनट बाद पड़ौसिन आती है।)

पड़ौसिन : अजी मैंने कहा, क्या कर रही हो लल्लू की मां ?

सास : अजी आओ पंडितानी जी, क्या कर रही हूं, अपने कर्मों को झींक

रही हूं।

पड़ौसिन : क्यों, क्या बात हो गयी ?

सास : अजी, हमारी ये महारानी जी हैं न ? बाप कंगले ने तो कुछ दिया नहीं, ऊपर से हर दम कुछ तोड़ा-फोड़ी और करती रहती है। मंहगाई का जमाना है, कैसे क्या करूं ?

पड़ौसिन : अरे तो अभी तो यह बच्ची है। धीरे-धीरे सब सीख जायेगी। कैसी सुन्दर और गाय सी सीधी बहू है।

सास : (चिढ़कर) हां जरूर सीधी है, तुम्हारे घर में हो तो पता लगे। सुन्दरता को लेकर क्या कोई चाटे ! मेरे बेटे को तो और बहुत से रिश्ते थे, हजारों का दहेज मिल रहा था।

पड़ौसिन : (व्यंग्य पूर्वक) तो फिर वहीं कर लेती रिश्ता। ऐसी फूहड़ बहू क्यों ले आयीं ?

सास : वही तो रोजना है, ले कहां से आती ? (ललाट के हाथ लगाकर) कर्म में तो यही लिखी थी।

पड़ौसिन : तो फिर अब सब्र भी करो, बिंध गये सो मोती। हां मैं तो भूल ही गयी थी। आज सांझ को मन्दिर में हरिकीर्तन है, चलोगी न ?

सास : जरूर चलूंगी पण्डितानी जी, दो घड़ी भगवान का नाम भी लेना ही चाहिए।

पड़ौसिन : अच्छा तो ठीक छह बजे चलेंगी। अगर समय हो जाय और मैं न आ सकूं तो तुम ही चली आना। अच्छा अब चलूं ?

(पड़ौसिन का प्रस्थान)

(बाहर से किवाड़ खटखटाने का शब्द होता है। फिर आवाज आती है 'चिट्ठी ले जाओ' साथ ही एक पार्श्व से एक लिफाफा आकर गिरता है।)

सास : बहू, ओ बहू, देखना तो किसकी चिट्ठी है ?

(बहू एक मिनट पश्चात एक पार्श्व से आती है, सास उसे लिफाफा देती है। बहू उसे उलट-पुलट कर देखती है फिर डाकघर की मोहर देखती है।

बहू : जयपुर से आया है, बाई जी का पत्र दिखता है !

सास : (घबराकर) कमला का चिट्ठी है ? पढ़ तो बहू ! हृदय पर हाथ रखकर) मेरा तो कलेजा धक्-धक् कर रहा है। देखें क्या लिखा है ? कमला की सास, सास क्या डाकिन है। इतना दहेज

देने पर भी रात-दिन ताने देती और सताती रहती है ।
(निश्वास छोड़कर) इस चिट्ठी में भी कोई दुःख की ही बात होगी ।

बहू मुंह फिराकर हंसती हैं, फिर लिफाफा फाड़कर पत्र निकालती है । पत्र को एक बार सरसरी निगाह से देखती है फिर पढ़ना शुरू करती है । सास उसकी ओर देखते हुए ध्यान से सुनती है)

बहू : (पत्र पढ़ती है ।)
पूज्य माता जी,
सादर प्रणाम !
मैं यहां राजी खुशी हूं और परमात्मा से आप सबकी राजी खुशी नेक चाहती हूं ।
बहुत दिनों से आपका कोई समाचार नहीं मिला, आशा है आप की तबियत ठीक होगी । भाई साहब की बदली हुई या नहीं ?
यहां के समाचार ठीक नहीं हैं । आप लोगों ने तो मुझे कुएं में धकेल दिया है, इससे तो अच्छा होता जहर दे देते । मेरी सास बात-बात पर गालियां देती है । अब तो कभी-कभी पीट भी देती है । कहती है, 'क्या मिला है तेरे पीहर से ? इतना सा दहेज तो मांगते खाते भी दे देते हैं । हमें तो अच्छे-अच्छे घर मिल रहे थे, मरे अजमेर वालों ने डुबो दिये और इसी प्रकार न जाने क्या-क्या कहती रहती हैं । क्या करूं मेरा भाग्य । हर सास बहू को दुश्मन समझती है ।
आप किसी प्रकार की चिन्ता न करना । पत्र देना ।
आपकी पुत्री
कमला

सास : (लम्बी सांस लेकर आंचल से आंखें पोंछते हुए रोनी आवाज में ।)
हे भगवान, तू ही देख, तू ही न्याय कर । मेरी फूल सी बच्ची को वह चुड़ैल कैसे सता रही है ! इतना तो दहेज दिया है, मेरा बेटा तो कर्जदार हो गया है, अब भी उस डाकिन का पेट नहीं भरा है··· (रोने लगती है)

बहू : अम्मा जी, अब तो घर-घर की यही कहानी है ।

सास : (रोते हुए) अरी मेरी कमला तो लक्ष्मी है, साक्षात् लक्ष्मी, उसे वह राक्षसी खाये जा रही है।

बहू : अम्मा जी सभी बहुएं अपनी मां के लिए लक्ष्मी हैं और सास के लिए दुश्मन हैं।

सास : चुप रह, मेरी बेटी क्या और लड़कियों की जैसी है ? तू ही क्या उसकी बराबरी कर लेगी ?

बहू : माफ करना अम्मा जी, मेरी भाभी यही कहेगी और कमला बाई की सास भी यही कहेगी।

सास : (आंखें पोंछते हुए क्रोध पूर्वक) चुप रह, मैंने तो दस हजार नकद दिया है, तेरे बाप ने तो पांच हजार ही दिए।

बहू : अम्मा जी आपने सोना कहां दिया है। मेरे पिताजी ने दस हजार का तो सोना ही दिया है।

सास : (क्रोध में भरकर पास में पड़ा हुआ लोटा उठाकर बहू पर फेंक देती है जिससे उसके सिर में चोट लग कर खून आ जाता है) जबान चलाती है नालायक, बाप ने दी तो फूटी कोड़ी नहीं ऊपर से ऐसी कुलक्षणी बेटी मंढ़ दी है हमारे माथे।

(बहू कपड़ों में से एक कपड़ा फाड़ कर पानी में भिगोती है और सिर पर पट्टी बांध लेती है। सास उठती हैं और क्रोध में पैर पटकती हुई बाहर चली जाती है। बहू एक ओर टंगे कृष्ण के चित्र के सामने हाथ जोड़ कर आँखें बन्द कर प्रार्थना करती है

हे भगवान धन्य है तेरे न्याय को ! मैंने पिछले जन्म में कितने पाप किये थे भगवान ? (रोते हुए) बता तो दो कि कब मेरे पाप पूरे होंगे ? आपने द्रोपदी की रक्षा की, सूर और मीरा की भी रक्षा की फिर मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ? (आंखें पोंछते हुए) और तुम्हें भी क्या दोष दूं ? तुम तो मां को उसका अपराध प्रत्यक्ष बता रहे हो उसकी बेटी को भी उसी तरह सताकर। पर क्या तुम बुद्धि नहीं सुधार सकते भगवान ?

(पड़ौसिन का आगमन)

लल्लू की मां, लल्लू की मां, (इधर-उधर देखती है, अचानक बहू पर दृष्टि पड़ती है)

पड़ौसिन : (विस्मय से) अरे बहू यह क्या हो गया सिर में ? पट्टी क्यों बांध रखी है ?

(बहू जोर से रोने लगती है)

अरे रोती क्यों है ? बात क्या है । वता तो सही ।
(बहू रोती रहती है । पड़ौसिन उसके सिर पर हाथ फिराकर) रो मत पगली तुझे मेरी कसम है, वात तो बता कि क्या हुआ ? कैसे लगी ?
(अपने पल्ले से बहू के आंसू पौंछती है । बहू सिसकती है ।)

बहू : क्या वताऊं चाची जी ? (जोर-जोर से सिसकने लगती है)

पड़ौसिन : अरी पगली, कुछ कहेगी भी ?

बहू : (रोते हुए) भगवान मुझे मौत दे दे नहीं तो मैं जहर खालूंगी ।

पड़ौसिन : तेरे पीहर से तो कोई ऐसी वैसी खबर नहीं आई है ?

बहू : (सिसकते हुए) उनने तो मुझ घर से बाहर निकाल दिया, अब क्या खबर देंगे और क्या खबर लेंगे ? एक बात बताओ चाची जी, जब औरतों की यह दशा है तो फिर भगवान औरत बनाता ही क्यों है ?

पड़ौसिन : मेरी पगली बेटी, भगवान के लिए औरत और आदमी में कोई फर्क नहीं है । उसके लिए सब बराबर हैं ।

बहू : तो फिर औरतों पर ही इतने अत्याचार क्यों होते हैं ? भगवान उनकी प्रार्थना क्यों नहीं सुनता है ?

पड़ौसिन : अत्याचार न करना आदमी की आदत पर निर्भर होता है, सभी औरतों पर तो अत्याचार नहीं होता है । कभी औरत में कमी होती है तो कभी वह अत्याचारियों के पल्ले पड़ जाती है । मुझे ही देख ! मुझपर कौन अत्याचार करता है ? और भगवान तो सबकी सुनता है, हाँ कभी देर से सुनता है कभी जल्दी ।

बहू : आप जैसी भाग्यवान हर एक तो होती नहीं, फिर भी औरत और आदमी में फर्क तो होता है ।

पड़ौसिन : पागल ही तो है । आदमी और औरत दोनों को भगवान ने बनाया है । उसके लिए दोनों समान हैं । दोनों में अपनी-अपनी अच्छाइयां हैं ।

बहू : (विस्मय से) सो कैसे ?

पड़ौसिन : आटे से रोटी बनाने के लिए पानी चाहिए कि नहीं ?

बहू : चाहिए ।

पड़ौसिन : इसी तरह पूरा मनुष्य बनने के लिए औरत को आदमी की और आदमी को औरत की आवश्यकता होती है । आदमी में शरीर की शक्ति होती हैं पर दिल पत्थर का होता है औरत के शरीर और दिल कोमल होते हैं ।

बहू : कुछ भी कहो औरत सदा से दुःख भोगती रही है। दमयन्ती ने दुःख भोगा, सीता और शैव्या ने भी दुःख भोगा। औरत के लिए भगवान का न्याय भी नहीं है।

पड़ौसिन : यों तो पुरुरवा, राम, शान्तनु और जहाँगीर ने क्या स्त्रियों द्वारा दुःख नहीं भोगे ? और भगवान का न्याय तो सबके लिए है। वह पापी को पाप की सजा भी देता है और धर्मात्मा को धर्म का फल भी। परन्तु हम समझ नहीं पाते हैं। ठूँस-ठूँसकर खाने वाला जब रोगी होता है तो क्या वह यह समझ पाता है कि यह उसके पेटूपन की सजा है ?

बहू : कहाँ समझता है ?

पड़ौसिन : यही हाल भगवान की सजा का भी है। अच्छा अब मैं चलती हूँ। भगवान पर विश्वास रख, विश्वास से पत्थर भी तैर जाते हैं।

(पड़ौसिन का प्रस्थान। एक-दो मिनट बहू स्तब्ध रहती है फिर फुसफुसाती है)

भगवान तुम न्याय तो करते हो पर तुम्हारे फैसले की भाषा को हर कोई समझ नहीं पाता भगवान तू अपने फैसले की भाषा को बदल दे न !

(कृष्ण के चित्र के सामने घुटनों के बल बैठ जाती है। ध्यान में इतनी लीन हो जाती है कि आस-पास क्या हो रहा है, इस का भी ज्ञान नहीं रहता है। दो-तीन मिनट बाद सास लौटकर आती है।)

सास : बहू, ओ बहू;

(कुछ रुककर ध्यान से देखती है)

मरी नहीं है, पर कैसा ढोंग रचा है ? लो आज इसका इलाज ही कर दूँ।

(इधर-उधर देखती है। एक ओर रखी माचिस उठाकर जलाने को तैयार होती है इसी समय बाहर से डाकिए की आवाज सुनाई देती है।)

चिट्ठी ले जाओ !

(एक विंग से फेंका हुआ एक पोस्टकार्ड मंच पर आकर गिरता है। सास माचिस फेंककर पोस्टकार्ड उठा लेती है।)

(घबराकर) अरे यह कोता फटी चिट्ठी ! बहू ! बहू !!

पढ़ना तो, यह किसकी चिट्ठी है ? हाय राम, तू दयालु है, दया सागर है।

(बहू धीरे-धीरे आँखें खोलती हैं व चैतन्य होती है। सास उसकी ओर चिट्ठी बढ़ाती है। चिट्ठी देखकर वह भी चमकती है। फिर चिट्ठी पढ़ना शुरू करती हैं।)

सर्वोपमान विराजमान ब्याई जी साहब श्री कमला शंकर जी को जयपुर से मोहनलाल की जै रामजी की मालूम हो। आगे समाचार यह है कि यहाँ बंसीलाल की बहू कमला का कल शनिवार कार्तिक कृष्णा 10 को स्वर्गवास हो गया है। समाचार मालूम होवे।

(पत्र को सुनते ही सास पछाड़ खाकर गिर पड़ती है और जोर-जोर से रोने लगती है।)

अरे राम मर गयी रे, अरे मेरी लाडली तू क्यों गयी रे, अरे मेरा हीरा, तेरी मौत मुझे क्यों नहीं आयी रे ?

(उठकर बैठती है और अपने सिर और छाती पीटती है और विलाप करती है। दो-तीन मिनट तक यह विलाप होता रहता है। बहू चिट्ठी को हाथ में लिए हुए स्तब्ध खड़ी रहती है। आवाज सुनकर पड़ौसिन आती है।)

अरी क्या बात हुई बहू ?

(बहू जो अब तक स्तब्ध खड़ी थी पड़ौसिन को देखकर रोने लग जाती है। पड़ौसिन उसके हाथ से चिट्ठी छीनकर पढ़ती है।)

पड़ौसिन : लल्लू की मां अब सब्र भी करो।

सास : (रोते हुए) अरे क्या सब्र करूँ ? मेरी हीरा-सी बेटी चली गई रे !

पड़ौसिन : भगवान के आगे किसकी चली है लल्लू की मां ? (पास बैठकर पल्ले से लल्लू की मां के आँसू पोंछती है।) अब सब्र भी करो, कमला की इतनी ही उम्र थी।

सास : अरी पंडितानी जी मेरी हीरा सी बेटी को खा गयी डायन, कैसे सब्र करूँ (जोर-जोर से रोते हुए दीवार से सिर टकराने का प्रयत्न करती है परन्तु पड़ौसिन पकड़ लेती है।)

पड़ौसिन : लल्लू की मां धीरज धरो और बहू को ही बेटी समझो ! जैसे

तुम्हारी कमला तुम्हें प्यारी थी वैसे ही यह अपनी मां को प्यारी है। अपनी बेटी को हर कोई प्यार करता है परन्तु पराई बेटी को अपनी बेटी बनाकर रखना मुश्किल है। मां-बाप अपनी छाती पर पत्थर रखकर अपनी बेटी को पराये हाथों में सौंपते हैं। उसे सताना पाप होता है। भगवान के घर देर होती है अन्धेर नहीं।

(सास बैठी-बैठी पछाड़ खाकर रोती हुई गिर पड़ती है।)

सास : अरी कमला री, तेरा न्याय कब होगा री ?

पड़ौसिन : अब सब्र भी करो लल्लू की मां ! कमला तो अब आ नहीं सकती चाहे कितनी ही रोओ-कलपो। बहू को कमला के समान समझो और सुख से रखो।

सास : पंडितानी जी ! **(पागल के समान पड़ौसिन के लिपट जाती है)** मेरी कमला का न्याय करेगा भगवान ?

पड़ौसिन : लल्लू की मां भगवान तो सब न्याय करता है। जो दुःख मिलते हैं वे भगवान की दी हुई सजा ही तो होती है परन्तु आदमी इसको समझता कब है ? इसी से बराबर पाप करता और दुःख पाता रहता है। अब तक भगवान ने बुद्धि ही भ्रष्ट कर रखी थी। तेरे पाप का ही फल है यह सब तूने अपनी बहू को खूब सताया और भगवान ने बदले में तेरी लक्ष्मी-सी बेटी को सताया। तेरी ही करनी का फल, तेरी बेटी को भुगतना पड़ा।

(सास रोती हुई खड़ी होती है और मूक रुदन करती बहू को हृदय से लगाती है)

सास : अरी मेरी बेटी, भगवान ने मेरी बुद्धि ही हर ली थी, हाय मैंने तुझे कितना सताया !

(झुककर बहू के पैर पकड़ना चाहती है बहू ऐसा करने रोकती है और पीछे हटती है।)

बहू : क्या कर रही हैं माता जी ?

सास : (रोते हुए) अरी माफ कर दे, मुझे माफ कर दे। अब कभी भी तुझे कुछ नहीं कहूंगी। (हाथ जोड़कर) बोल करेगी न माफ ?

(बहू की आंखों से आंसू गिरते हैं। पड़ौसिन भी अपनी आंखें पोंछने लगती है और दोनों की ओर देखती हुई धीरे-धीरे चली जाती है।)

पटाक्षेप

इन्सानियत जिन्दा है

ब्रजमोहन द्विवेदी

पात्र-परिचय

सुधीर : भारतीय सेना का मेजर
नाथन : सुधीर का मित्र व सहायक
महमूद : पाकिस्तानी फौज का मेजर
हाफिजजी : पाकिस्तानी नागरिक
प्रकाश : सुधीर का बचपन का मित्र
पप्पी : सुधीर का पुत्र
आभा : सुधीर की पत्नी
बानू : हाफिज जी की अविवाहित पुत्री । डाकिया, सैनिक इत्यादि ।

प्रथम दृश्य

[सितम्बर 1965 की एक संध्या। पाक-भारत के युद्ध का एक मोर्चा। भारतीय मेजर सुधीर व मि० नाथन मोर्चे पर जासूसी के लिए सीमा पर आगे बढ़ रहे हैं कि अचानक कुछ पाकिस्तानी सैनिकों से मेजर सुधीर व नाथन की मुठभेड़ हो जाती है।]

महमूद : हैण्ड्स अप।
(मेजर सुधीर विवश होकर अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लेता है। मि० नाथन पाकिस्तानी सैनिकों की दृष्टि बचाकर पास ही ओट में छिप जाता है।)

महमूद : सरेण्डर।
(मेजर सुधीर अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये धीरे-धीरे महमूद

की ओर बढ़ता है। मि० नाथन द्वारा मेजर महमूद के आगे अचानक हैण्डबम फेंकने व बम के धड़ाके के साथ फटने से महमूद हड़बड़ा जाता है। बन्दूक हाथों से छूटकर जमीन पर गिर जाती है। मेजर सुधीर अपनी पिस्तौल महमूद की ओर साध लेता है।)

सुधीर : हैण्ड्स अप।

(पाकिस्तानी सैनिक सुधीर के आगे आत्मसमर्पण कर देते हैं। नाथन तुरन्त ओट से निकलकर आता हैं।)

सुधीर : (नाथन से) इनकी तलाशी लो।

(नाथन तलाशी लेता है महमूद की जेब में एक डायरी, नक्शा व पेन्सिल निकलते हैं। मि० नाथन डायरी सुधीर को सौंप देता है। सुधीर डायरी खोलकर देखता है।)

सुधीर : (महमूद से) तुम्हारा नाम महमूद है ?

महमूद : जी हाँ।

सुधीर : (नाथन से) मि० नाथन ! इन्हें सेना के सुपुर्द करो, और देखो ! इनके साथ अच्छा व्यवहार किया जावे। ये हमारे बन्दी हैं।

नाथन : यस सर।

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

(लड़ाई के मोर्चे पर मेजर सुधीर व मि० नाथन आपस में बातचीत कर रहे हैं।)

नाथन : आज भी हम लोगों का कोई पत्र नहीं आया सर।

सुधीर : डाक जान-बूझकर रोक ली जाती है।

(कुछ रुककर) घर वालों का एक-एक पल कितनी परेशानी से गुजर रहा होगा। पता नहीं उन्हें कब कोई अच्छी-बुरी खबर मिले।

नाथन : हम मौत और जिन्दगी से खेल भी तो रहे हैं।

सुधीर : यह हमारा कर्त्तव्य और विवशता दोनों है। सच नाथन ! इस वक्त मुझे फौज में होने का गम नहीं, गरूर है। इसलिए कि मैं सही अर्थ में एक सफल जिन्दगी जी रहा हूं। और उन कर्त्तव्यों को पूरा कर रहा हूँ जो जिन्दगी पाने के साथ हर आदमी के लिए जरूरी है।

नाथन : आपके विचार बहुत ऊँचे हैं मेजर !

(इतनी ही देर में धड़ाका होता है। सुधीर व नाथन चौंक उठते हैं। अचानक एक गोली मेजर सुधीर को आकर लगती है। सुधीर गिर पड़ता है।)

सुधीर : नाथन ! हम शत्रु-सेना से घिर चुके हैं। तुम शीघ्रता से हमारी चौकी को सूचित करो। मैं तब तक दुश्मन को रोकने का प्रयत्न करता हूं।

नाथन : लेकिन सर, आपको छोड़कर मैं कैसे जा सकता हूं।

सुधीर : नाथन ! यह समय भावुकता का नहीं है। मेरा मोह छोड़कर तुरन्त लौट जाओ···अपनी सुरक्षा करो।

नाथन : (करुण स्वरों में) सर आप घायल हो चुके हैं, आपको छोड़-कर······।

सुधीर : (कड़े स्वर में) नाथन ! मेरा आदेश है। तुम तुरन्त लौट जाओ···लौट जाओ।

(नाथन विवश होकर पीछे लौटता है। सुधीर बेहोश हो जाता है। कुछ पाकिस्तानी सैनिकों का प्रवेश)

एक सैनिक : यह है मेजर सुधीर, बहुत खतरनाक आदमी है। इसने हमारे कई हमले नाकामयाब किये हैं।

(पाक मेजर सुधीर की छाती में संगीन चुभोते हुए अपने सैनिकों को सावधान करता है। सैनिक नीचे झुककर मेजर सुधीर को उठाने का प्रयत्न करते हैं।)

दूसरा सैनिक : यह तो खुदा का प्यारा हो गया सर।

(और हँसने लगता है।)

एक सैनिक : हैं ! मर गया ? (सुधीर को हिला-डुलाकर देखता है।)

मेजर महमूद : इसे घसीटकर लाशों के गड्ढे में फेंक दो।

(दो सैनिक मेजर सुधीर के पैर व गर्दन पकड़कर उठाते हैं।)

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

(मेजर सुधीर के घर का दृश्य। सुधीर की पत्नी आभा पूजा की थाली हाथ में लिए हुए है। डाकिया टेलीग्राम लाता है। आभा टेलीग्राम पढ़ती है। पूजा की थाली आभा के हाथ से छिटक कर गिर जाती है।)

आभा : (तार दुबारा पढ़ते हुए।)
मेजर सुधीर मिसिंग, बिलीव्ड डैड।
नहीं-नहीं ··ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यह बिल्कुल गलत है···यह बिल्कुल गलत है। (आभा अपने चेहरे पर हथेलियाँ लगाये रो पड़ती है।)

पप्पी : (बाहर से दौड़कर आता है।)
मम्मी ! क्या हुआ मम्मी ! फिर कोई टेलीग्राम आया मम्मी !
(आभा पप्पी को खींचकर अपनी छाती से लगा लेती है। रोती हुई कहती है···)

आभा : घबरा नहीं बेटे ! तेरे पापा को कुछ नहीं होगा।
(सुधीर के मित्र प्रकाश का प्रवेश। पप्पी दौड़कर प्रकाश के पास आता है।)

पप्पी : अंकल ! पापा ··(रोने लगता है।)

प्रकाश : क्या हुआ पापा को बेटे ! तू इतना रोये क्यों जा रहा है ?

पप्पी : मुझे कुछ पता नहीं अंकल ! मम्मी बुरी तरह रो रही है।

प्रकाश : ईश्वर न करे कुछ हो।
(पप्पी आभा के हाथ से टेलीग्राम छीनकर प्रकाश को दे देता है। प्रकाश टेलीग्राम पढ़कर गम्भीर हो जाता है।)

पप्पी : मम्मी ने नहीं बताया अंकल ! तुम्हीं बता दो क्या लिखा है इसमें।

प्रकाश : काश ! कोई बताने वाली बात होती बेटे !
(प्रकाश आभा की ओर मुड़ता है)

प्रकाश : मत रोओ आभा ! तुम्हारे सुहाग को कभी आँच नहीं आ सकती।

आभा : भगवान के लिए कुछ न कहो प्रकाश ! मेरी व्यथा की चरम सीमा तक मुझे पागल बने रहने दो। मैं नहीं चाहती कि कोई मेरे आँसुओं पर तरस खाये ! मैं अपनी पीड़ा के लिए स्वयं जिम्मेदार हूँ।

प्रकाश : ईश्वर तुम्हें शक्ति और धैर्य दे। रोने से होगा भी क्या आभा। हम साँस के अन्तिम क्षणों तक सुधीर की प्रतीक्षा करेंगे। हो सकता है उसे पाकिस्तानियों ने कैद कर लिया हो।

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

(स्थान—पाक युद्ध भूमि । मेजर सुधीर की चेतना लौटती है। मुर्दों के गड्ढ़े से खिसककर वह बाहर निकलता है । शरीर पर घाव लगे हैं । वह इधर-उधर शंकित दृष्टि डालकर देखता है ।)

सुधीर : मौत की माँद से तो निकल आया, लेकिन फिर मौत की मंजिल की ओर ही जा रहा हूँ । दूर-दूर तक कहीं कोई पड़ाव, बस्ती, कोई सुरक्षित जगह नजर नहीं आती, जहाँ ठहरकर दम भर सकूँ । किसी ने देख लिया तो क्षण-भर में भून देगा । हे भगवान ! अब तेरा ही सहारा है । (कुछ सोचकर) इस भारतीय वर्दी में किसी ने देख लिया तो मारा जाऊँगा । इसे उतारकर छिपा दूँ ।

(सुधीर अपनी भारतीय वर्दी उतारता है । वर्दी के नीचे पट्टेदार पाजामा व बुशर्ट पहने होता है ।)

पटाक्षेप

पंचम् दृश्य

(युद्ध भूमि के समीप पाक का हसनपुरा गाँव । सवेरा हो रहा है । एक मकान के अहाते में एक वृद्ध मुसलमान कुरान शरीफ का सस्वर पाठ कर रहा है । मेजर सुधीर किसी प्रकार खिचते-घिसटते हाफिज जी के पास पहुँचता है ।)

सुधीर : (हाफिज जी से) दो मिनट के लिए आपको तकलीफ दूंगा हाफिज साहब । खुदा के लिए मुझ गमज़दा की हालत पर रहम खाइये ।

(हाफिज जी सुधीर की आवाज सुनते ही चौंक पड़ते हैं । एक सर्वथा अपरिचित युवक को समीप देखकर घबरा जाते हैं ।)

सुधीर : खौफ न करें, मैं एक मुसीबत का मारा इन्सान हूं । मेरा सारा बदन चोटों से भरपूर है और थोड़ी हमदर्दी के लिए आपके कदमों में आया हूँ ।

हाफिज : (सुधीर को घूर कर देखते हुए) तुम कौन हो नौजवान ? कहाँ से आ रहे हो ?

सुधीर : पाक फौज का एक घायल सिपाही···

हाफिज : (एक दर्दीली साँस लेकर) ओह ! मगर तुम यहाँ कैसे चले आये। तुम्हें तो मिलिट्री हॉस्पिटल में जाना चाहिए था। तुम्हारा पहनावा तो इस बात का सबूत नहीं कि तुम फौज के जवान हो।

सुधीर : खुदा के लिए मेरी बातों पर यकीन कीजिये हाफिज जी। (सुधीर अपनी जीभ अपने सूखे होंठों पर फेरता है।) मेरी चोटें अब भीग गई हैं। मारे दर्द के मेरा बुरा हाल हो रहा है। प्यास के मारे गला सूख रहा है। मुझे दो घड़ी चैन की साँस तो लेने दीजिए, मेरी मुसीबत के साथ एक लम्बी कहानी है। अगर इसी दम बताने लगा तो मेरी जान निकल जायेगी। पानी···आह पानी···(हाफिज जी के सामने पछाड़ खाकर गिर जाता है।)

हाफ़िज : (घबराकर उठते हुए) या खुदा ! तूने यह मुसीबत कहाँ से लादी। (बानू को पुकारते हैं) बानू ! अरी बानू···ओ बानू बेटी ! दौड़कर आ तो सही। देख तो यह क्या गजब है।

बानू : आई अब्बा ! (पार्श्व से उत्तर देती है) (हाफिज जी बेहोश जवान के पंखा झलने लगते हैं। बानू दौड़कर आती है। दृश्य देखकर स्तब्ध रह जाती है।)

हाफिज : अरी पगली, खड़ी-खड़ी देखती क्या है। दौड़कर एक लोटे में पानी तो ला···। अल्लाह कहीं मेरे दरवाजे कुछ हो गया तो खामखाह का···। (बात अधूरी छोड़कर सुधीर की नब्ज देखने लगते हैं। बानू पानी का लोटा लेकर आती है। हाफिज जी सुधीर के मुख पर पानी के छींटे देते हैं। सुधीर होश में आकर आह भरता है।)

हाफ़िज : कैसी तबियत है नौजवान ! (स्नेह पूर्वक) कहो तो तुम्हारे लिए दूध मंगवा दूँ। तुम बहुत थके मालम होते हो। (बानू से) जा बेटी, एक प्याले में थोड़ा-सा गर्म दूध ले आ।

बानू : सिर्फ दूध अब्बा।

हाफिज : दूध में थोड़ी फिटकरी भी डाल लेना, दर्द को राहत मिलेगी।

(बानू चली जाती है।)

सुधीर : मैं आपका बहुत शुक्र गुजार हूं। आप बहुत रहम-दिल इन्सान हैं।

हाफिज : इसमें रहम दिल की कोई बात नहीं, यह तो इन्सान के वास्ते इन्सान का फर्ज है। तुमने अपना नाम नहीं बताया।

सुधीर : मुझे शेख हसन कहते हैं।

हाफिज : शेख हसन ? क्या तुम मुस्लिम हो ?

सुधीर : मजहब से तो मुस्लिम ही हूं, वैसे खुदा का बन्दा हूँ।

हाफिज : हाँ, हर इन्सान खुदा का बन्दा है।

(बानू दूध का कटोरा लेकर आती है।)

हाफिज : बुढ़ापे की वजह से मेरे हाथ काँपते हैं। बेटी बानू ! इसे दूध पिला दे। मादरे वतन के लिए कुर्बानी करने वाले सिपाहियों की खिदमत करना हमारा फर्ज है।

(पहले तो बानू कुछ हिचकिचाती है, फिर बड़े निश्छल भाव से दूध का कटोरा सुधीर के होंठों से लगा देती है। सुधीर गटागट दूध पी जाता है।)

पटाक्षेप

षष्ठ दृश्य

(हाफिज जी का घर। एक कमरे में सुधीर चारपाई पर गहरी नींद में सोया हुआ है। नींद में बड़बड़ाने लगता है। इसी बीच बानू कमरे में प्रवेश करती है और सुधीर का नींद में बड़बड़ाना सुनती है।)

सुधीर : (नींद में) आभा···मैं मौत की भयानक घाटियों से निकलकर आ रहा हूं।···तुम कल्पना भी नहीं कर सकती कि कितनी मुसीबतें झेलता हुआ किस तरकीब से तीन साल की जिन्दगी गुजारकर मैं सही-सलामत तुम्हारे पास आ सका हूँ·· आह··· मैंने एक रहमदिल परिवार को कितना मीठा धोखा दिया है··· अरे, तुम आँखें फाड़े मुझे क्या घूर रही हो·· मेरा पप्पी कहाँ है ?

(सुधीर द्वारा नींद में अपना रहस्य खोल देने पर बानू चीख पड़ती है और खूंटी पर टंगी तलवार को म्यान से निकालकर सुधीर की छाती में सटाकर गरज उठती है।)

बानू : जलील···धोखेबाज···होश में आ जा। (सुधीर जागकर हत-

प्रभ रह जाता है। उसकी समझ में कुछ नहीं आता, वह हकलाई आवाज में कहता है···)

सुधीर : बानू···यह क्या बानू ?

बानू : अब ज्यादा फरेब की कोशिश न करो, एक पल भी न लगेगा और यह तलवार तुम्हारी छाती में धँसकर तुम्हारा काम तमाम कर देगी। मैं तुम्हें चन्द लमहे का वक्त देती हूँ, बताओ तुम कौन हो, तुम्हारा असली नाम क्या है ? ख्वाब में तुम जो कुछ बक रहे थे उसने तुम्हारा पर्दाफाश कर दिया।

सुधीर : तुम ठीक कहती हो बानू ! वाकई मैं बहुत जलील और विश्वास-घाती हूँ। मैं सरासर मुलजिम हूँ। लो, तलवार मेरी छाती में चुभो दो।

(सुधीर छाती तानकर, आँखें बन्द कर चुपचाप लेटा रहता है मानो निश्चिन्त भाव से कुर्बानी के लिए तैयार है।)

बानू : इस तरह के फिल्मी डायलॉग करके तुम जिन्दगी की भीख नहीं पा सकते। बताओ तुम्हारी असलियत क्या है ?

सुधीर : असलियत···मेरी असलियत···(सूखी हँसी हँसता है)···तुम सुनना ही चाहती हो तो सुनो···मेरा घर हिन्दुस्तान के राज-स्थान प्रदेश में है। मुझे मेजर सुधीर कहते हैं। स्यालकोट मोर्चे पर पाक फौज का सामना हुआ, मैं घायल हो गया, मरा हुआ समझकर पाक फौजियों ने मुझे मुर्दों के गड्ढे में फेंक दिया। मगर मेरी साँसें खत्म नहीं हुई थीं। होश आने पर जिस किसी तरह गड्ढे से निकलकर घिसटता हुआ तुम्हारे दर पर आ गया।

(बानू वैसी ही स्थिति में खड़ी कोई मजबूत इरादा सोचने लगती है।)

सुधीर : सोचने क्या लगी। चुभो दो न तलवार मेरी छाती में। मैं जानता था कि कभी यह वक्त जरूर आयेगा जब मेरी फूल जैसी प्यारी बहिन बानू मेरी जान की दुश्मन बन जायेगी। तुम मुझे मार सकती हो, मगर हुकूमत और सियासी दुश्मनी को अलग रखकर सोचो तो तुम्हें एहसास होगा कि इन्सान··· इन्सान का दुश्मन कभी नहीं रहा, कभी नहीं रह सकता।

बानू : खुदा के लिए चुप रहो, अब मैं एक अलफाज भी नहीं सुनना

चाहती । आह, हमें फरेब और मीठा धोखा देकर तुम इन्सानी फर्ज की बातें करने लगे । यह क्यों भूलते हो कि अब्बा पक्के इस्लामी और कट्टर मुल्क परस्त हैं, अगर मैं शोर मचादूं तो अब्बा अपने हाथों से तुम्हारी जान ले लेंगे ।

सुधीर : जानता हूँ···लेकिन बानू मैंने जिन्दगी पाने की मिन्नत और इल्तजा सिर्फ अपने मासूम बाल-बच्चों के खातिर की है । मैं समझता हूँ उन्होंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा है ।

(सुधीर अपनी आँखें बानू के काँपते हुए चेहरे पर टिका देता है ।)

बानू : बाल-बच्चे···बीवी बच्चे···

(बानू की जबान लड़खड़ा जाती है और तलवार हाथ से छूटकर फर्श पर गिर जाती है। बानू तेजी से मुड़ती है और अपना चेहरा अपनी दोनों हथेलियों से छिपाकर सिसकने लगती है । फिर वह तुरन्त मुड़कर करुण स्वर में सुधीर से कहती है ।)

बानू : काश ! हमने तुम्हें हमदर्दी, पनाह और मोहब्बत न दी होती तो शायद फैसला दो घड़ी में हो जाता । लेकिन अब फैसला खुदा पर छोड़ती हूँ । सच है—किसी औरत के सुहाग और किसी बच्चे को बाप के साये से महरूम करने का हमें कोई अख्तियार नहीं ।

सुधीर : (खड़ा होकर) बानू ! तुम देवी हो, देवी से भी महान् ।
(हर्षातिरेक में सुधीर बानू का हाथ चूम लेता है ।)
विश्वास मान मेरी प्यारी बहिन । जिस वक्त तू अपनी आभा भाभी से मिलेगी, वह तेरे पाँव चूम लेगी और पप्पी तेरी बाहों में समा जायेगा ।

बानू : खुदा उन सबको सलामत रखे ।

(बानू अपने दुपट्टे से अपनी आँखें पोंछती है ।)

बानू : (सावधान होकर) सुधीर भाई जान ! अब देर न करो । सुबह की रोशनी तुम्हारे खतरे का पैगाम हो चलो, मैं तुम्हें हिन्दुस्तानी सरहद पर छोड़ आऊँ ।

सुधीर : आह ! तुमने जो मुझ पर एहसान किये हैं, मैं अपनी जान की कुर्बानी देकर भी उनका बदला नहीं चुका सकता मेरी प्यारी

वहिन ! मगर मैं ईश्वर को साक्षी करके कसम खाता हूँ कि मैं तुम्हारे होने वाले शौहर महमूद की तहेदिल से खोज और हिफाजत करूँगा, उस वक्त मुझे वेहद खुशी होगी जब महमूद तुम्हें व्याह रचाकर ले जायेगा और मैं अपनी प्यारी बहिन और अपने प्यारे बहनोई को गले लगाकर विदाई दूँगा। मेरी गलतियों के लिए अब्बा से माफी माँग लेना बानू ! खुदा हाफिज।

(बानू की आँखों में जुदाई के आँसू ढुलक पड़ते हैं। वह सुधीर को जाता हुआ देखती रहती है। पौ फटने को होती है। मुर्गा बाँग देता है। दूर भारतीय सीमा से फिल्मी गीत का रेकार्ड 'चल उड़ जा रे पंछी यह देश हुआ बेगाना' बज उठता है। दुःखी हृदय लिए बानू धीरे-धीरे लौट पड़ती है।)

(धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।)

□

सुरंगा श्रावण

जयसिंह चौहान जौहरी

सांस्कृतिक रसीले और रंग भीने त्यौहारों में राजस्थान का श्रावण अपनी सानी का बेजोड़ पर्वोल्लास-मास है। प्रकृति की रजत रंगिनियाँ पावस की कोमल बूंदों से छन कर अनायास कई बेल-बूटों, लता-वितानों एवं किसलय-कलियों में इस मरुधरा पर प्रस्फुटित हो जाता है और "सूखे पर हरा" का एक नैसर्गिक अन कहा विस्फारण हो जाता है।

यहां की रमणी को सलौने सावन ने अपने वैभव में संजो लिया है, या कि संवार लिया है। तभी तो श्यामल घटाओं की छटा के साथ वह "काजलिया" ओढ़ती हैं। धरित्री की हरितिमा के साये में वह सुआ पंखी साड़ी पहनती है, और इधर इन्द्रधनुष का अवलोकन कर वह "घनख" का यह नीव करती है।

इसी लावण्य में बदलिया का काव्य में जो मानवीयकरण हुआ है वह दृष्टव्य है :—

सावण घणो सुरंगियों का जलिया साड़ीह।
चाली सतरंग घूंघटे बादलियाँ लाड़ीह ।।

सुरंगे सावन का कहना ही क्या, बादलियाँ रूपी नव वधुएँ काजलिया साड़ी पहने इन्द्रधनुषी घूंघट में चल दी हैं।

श्रावण मास के अनुपम त्यौहारों में "काजलिया तीज" जिसे झूलनी तीज, सुखिया तीज, सावनी तीज आदि कई नामों से अभिहित किया है, सर्वोपरि त्यौहार है। अपने अखण्ड सुहाग की अभीप्सा में स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और गौरी पूजन करती हैं। इस अवसर पर यह नारी अपने प्रवासित पति को मन-वाञ्छा से आह्वान करती हैं, क्योंकि वह मानती है कि पति-पत्नी के विलगाव में इस संस्कृति पर कोई तीज त्यौहार ही नहीं :—

मोर बिना डूंगर किस्या मेह बिन किसी मलार।
तिरिया बिन तीजां किसी पिव बिन किसा तेवार ।।

अत्यधिक नुकसान भी उठाना पड़े तो कोई बात नहीं किन्तु हे प्रिय, सावनी तीज यों ही नहीं चुक जाये :—

आसोजां आवे मती मत आजे बैंसाख।
सावणिये रूकजे न थूं घाटो सहजे लाख ।।

श्रावण मास पावस का पूर्ण यौवन काल माना गया है, महीन बूंदों से धरा और अथाह जल प्रवाहों से नदियाँ परिप्लुत हो जाती हैं। अटा पर काली घटा झूमी ही रहती है। ऐसी वेला के सावन की झड़ियों में अकेली रमणी डर भी जाये तो कौन-सी अत्युक्ति ? मेघों की गर्जना और बिजली की चकाचौंध जो होती है।

'ढोला मारू' प्रसंग में मारवणी अपने ढोला (पति) को ढ़ाढ़ी के साथ मनोद्वेलित किन्तु चिन्तित संदेशा कहलवाती है :—

जो तू न आयहु सायवा सावणिया री तीज।
चमक मरेसी मारवी देख खिवंता बीज ।।

इस मन भावन ऋतु में मन बसिया अपने रसिया को आगत सौभाग्य व संयोग के स्वप्न-सिन्धु में डूब कर परम्परित नारी ने किन क्षणों में बुलाने को बेबस किया है, और उसकी व्यस्तता को तीखी अनियों से तोड़ा है —

धँसिया बादल धुर दिसा चहुँ दिसियाँ चमकंत।
मन बसिया आजो महल कामण रसिया कन्त ।।

विरहाँत संयोग और सौख्य की हिलोरें भी तो उठ ही जाती हैं जब मधुर आशा का स्रोत फूट निकलता है। घर आंगन, बाग-बगीचों, और अमराइयों में झूलने का आनन्द सूनापन तोड़ देता है। सहेलियों के कोकिल कण्ठों से प्रस्फुटित गीतों में झूलों के दोलन, रिमझिम में भीगे उड़ते अंचल, और पादप-पत्तों से विझरित विद्रुम के आमोद, मनोव्यथा के नितान्त नीरव निशीथ को मोड़ दे देते हैं।

जीवन का एक अंश अनन्त तन्मयता का है वर्ष का एक पर्व ही सुरभित-सुखों का है :—

पावस नित ही बादला पावस नित ही बीज।
पावस नित नह इन्द्र-नख नित नह झूलण तीज ।।

प्रेयसी को बरसात की मेघ-गर्जना सुहाती है, वह मेह बिन्दुओं को झरते-मुक्ता की संज्ञा देती है। इन्द्रधनुष की साज-सज्जा का स्मरण दिलाती हुई प्रियतम को शीघ्र घर बुलाने को उद्यत रहती है। जो उद्दीपन के उद्रेक का कारण बन गया है:—

मेहाँ मोती बरसिया मेहाँ मीठी गाज।
तू घर वेगो आव लख इन्द्र धनख रा साज ।।

अंगुलियों की पोरें घिस गईं घड़ियां, दिवस, और मास गिनते-गिनते और वह अवधि निकल गई, किन्तु हे निष्ठुर, तू नहीं आया। अपने द्वारा कई तरह से किये गये वायदों से मुकर कर मुझे निरुत्साहित किया। प्रोषितपतिका के वियोग शृंगार का अनूठा उदाहरण है:—

सावण आवण कह गयो कर गयो कोल अनेक।
गिणता-गिणता घिस गई आंगलियां री रेख।।

उत्तर दिशि सघन घटाओं से ओत-प्रोत है, पूर्व दिशा में बिजली कौंध उठी है। किन्तु मानिनी प्रिया पीहर ही बैठी है, फिर तीज पर्व का गर्व किस ठौर-ठिकाने है ? एक सार्थक रंग-व्यंग्य उद्वेलन देखने को मिलता है—:

धुर दिस जल धर झूमिया पुर दिस वहकी बीज।
कर रिस पीहर कामणी किण मिस होसी तीज।।

बरसात में ढलती आँख और झरती पाँख लेकर चातक बोलता है। विरहिणी कहती है—"हे प्रिय पपीहरी की वेदना का रस तो अनमापा है, उसने दिवस देखा न रात अपने अन्तर का दुःख बोल-बोल कर संसार के सम्मुख कर दिया है, किन्तु मैं तो तेरी पूजा की मूक आरती हूं, मेरी मौन व्यथा को समझ इस बड़े त्यौहार तीज पर अवश्य घर आना—:

पीड़ा अघट उगाड़ दी यो पपीहण रो प्यार।
हूँ अण बोली आरती आ घर तीज-तेवार।।

प्रियतम को अविलम्ब आने के संदेश भिजवाने में मरुधरा रमणी ने पावस के प्रिय पांखी हंस, बक, चातक और कुरजां से खूब काम लिया है:—

"नह आई झट बात कह कुरजां रहगी रात"

इसी प्रकार प्रेयसी सोचती है सावन की झड़ी जोरदार लगी है, कहीं प्रियतम वन की राह किसी वृक्ष की छाँह में खड़े बरसात रुकने की बाट देखने लग गये हैं, और सन्ध्या होने आई अभी तक नहीं आये हैं तो ऐसे अवसर पर वह चातक से मदद लेती हुई कह उठती हैं—

दूरो बोल पपीहड़ा रूँखा-रूँखा छाण।
जिणी छाँव उभा धणी वठे सुणा यो गाण।।

वह कहती है:—

लीलो चमके ठाण पर सजणी चिमके सेज।
बादल चिमके बीजली बालम करो न जेज।।

हे प्रियतम, घोड़ा अस्तबल में चमक रहा है तो तुम्हारी प्रेयसी सेज की शोभा बन बैठी है, बिजली श्यामल मेघों में प्रकाश भर रही है। अतः हे प्रवासी तुम घोड़े पर बिजली की प्रभा में अंधियारी यामिनी का भय त्याग अविलम्ब मेरे सान्निध्य में चले आओ।

सावन के सत्त को किसने जाना है, किसने समझा है। मेह की झड़ियाँ ललक उठी हैं। नदियों के उर पर लहरें उफन आई हैं बगुले की पंक्तियाँ उड़-उड़ आई हैं। मयूरों ने शोर मचा कर मन मोह लिया है:—

लूम्वा झड़ नदियां लहर वग पंगत भर वथ्थ।
मोराँ शोर ममोलिया सावण लायो सत्थ॥

श्रावण के पंछियों ने सामयिक सृजन भी खूब किया है, साहित्य सृजन की इस ऋतु को साहित्यिकों ने कैसे संवारा है :—

गीत रच्या पपीहा सरस झिंगुर करया अरथ्थ।
दादुर, मोर अलोचिया सत सावण समरत्थ॥

इस मधुर वेला में पपीहे ने सरस गीतों की संरचना की, तो झींगुरों ने उसे अर्थान्तरित किया। दादुर, मोर इस काव्य के समालोचक बने। इस प्रकार सत श्रावण अपने आप में सामर्थ्यवान सत-युग सिद्ध हुआ।

ऐसे ही इस मन भावन सावन की विशेषता की जहाँ एक और विरह व्रत, निर्मल आघात, अहर्निस वियोगजन्य व्यथा का वैभव इन काव्य-कणियों में अभिलषित हुआ है वहीं दूसरी ओर प्रकृति, प्रणय, मधुर आशा का आर्द्र-सिंचन अमीय विश्वास, निर्मल स्नेह, अटल आस्था, उत्कट उत्कण्ठा, कुल कीर्ति का आभरण इस श्रावण संदर्भित साहित्य-सृष्टि में सिरज उठा है।

□

मेवाड़ की साहित्यिक-संस्कृति

श्रीमती कमला अग्रवाल

मेवाड़ में साहित्य और कला का जो विकास हुआ है, वह अत्यन्त ही महत्त्व-पूर्ण है। साहित्यिक अभिव्यक्ति संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि सभी भाषाओं में हुई है, इसके प्रमाण में कहीं-कहीं तो ग्रंथों के उल्लेख प्राप्त होते हैं और कतिपय ग्रंथ तक उपलब्ध होते हैं।

मेवाड़ के साहित्य, ज्ञान-विज्ञान व कला के विकास के ज्ञातव्य मेवाड़ व मेवाड़ के बाहर के कई शिलालेखों से प्राप्त होते हैं। राजा नरवाहन[1] के श्री एकलिङ्ग जी वि० सं० 1028 (ई० सन् 971) के शिलालेख[2] से ज्ञात होता है कि यहाँ स्याद्वाद (जैन), सौगात (बौद्ध) और वेदांग मुनि (आर्य) का महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ हुआ था, जो मेवाड़ के बौद्धिक विकास की महानता का द्योतक है।

रामानुजाचार्य (वि० सं० 1073) से मेवाड़ प्रभावित रहा, जिसके परि-णामत: आगे चलकर नारायण (विष्णु) के कई उपासक साधु-महात्माओं ने इस प्रदेश को उपासना व भक्ति से आप्लावित कर दिया। चित्तौड़गढ़ से लग-भग 10 मील उत्तर में घोसुंडी नामक ग्राम से प्राप्त वि० सं० के पूर्व की दूसरी शताब्दी के लेख से प्रकट है कि वर्तमान नगरी नामक स्थान, जो प्राचीन काल में 'मध्यमिका' नाम से विख्यात था, के राजा सर्वतात ने अश्वमेध यज्ञ किया था। इसी लेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा सर्वतात ने भगवान् संकर्षण और वासुदेव की पूजा के निमित्त शिलाप्राकार(मन्दिर) बनवाया था। इससे निश्चित है कि मेवाड़ में विक्रम संवत् पूर्व की दूसरी शताब्दी से भी पहले मूर्ति-पूजा का प्रचार था और विष्णु की पूजा होती थी। पीछे से विष्णु की अनेक प्रकार की चतुर्भुज मूर्तियाँ बनने लगीं, फिर हाथों की संख्या यहाँ तक बढ़ती गई कि कहीं चौदह, कहीं सोलह, कहीं बीस और कहीं चौबीस हाथ वाली मूर्तियाँ देखने में आती हैं।

मेवाड़ में नागदा, आहाड़, चित्तौड़गढ़, कुंभलगढ़ आदि स्थानों में विष्णु

मन्दिर भिन्न-भिन्न समय के बने हुए हैं, जहाँ से विष्णु के पृथक्-पृथक् अवतारों की कई मूर्तियाँ मिली हैं। समय-समय पर इस सम्प्रदाय की कई शाखाएं हुईं, जिनमें मेवाड़ में मुख्यतः वल्लभ, रामानुज और निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। विक्रम संवत् की अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल से मेवाड़ में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ और नाथद्वारा तथा कांकरोली में इस सम्प्रदाय के आचार्य रहने लगे। मेवाड़ में विष्णु के प्राचीन मन्दिर चित्तौड़गढ़, वाडोली, नागदा, आहाड़ आदि अनेक स्थानों में विद्यमान हैं, जिनमें सबसे प्राचीन बाडोली का शेषशायी विष्णु का मन्दिर है, जो विक्रम की दसवीं शताब्दी से भी पहले का बना हुआ है। नगरी से विक्रम संवत् 481 (ई० सन् 424) का एक शिलालेख मिला है, जिसमें एक विष्णु मन्दिर के बनने का उल्लेख है पर वह मन्दिर अब नहीं रहा।

शिव की पूजा मेवाड़ में दीर्घकाल से चली आ रही है ऋषभदेव से कुछ दूर कल्याणपुर नामक प्राचीन नगर के खण्डहर से प्राप्त विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी की लिपि के एक लेख में कर्दथिदेव द्वारा शिव मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है। शिव मन्दिर सम्बन्धी मेवाड़ से मिले हुए शिलालेखों में यह लेख सबसे प्राचीन है। विष्णु की भाँति शिव की भी भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं। शिव की मूर्तियाँ प्रायः लिङ्गाकार या ऊपर से गोल और नीचे चार मुख वाली हैं। इन चारों मुखों में पूर्व का मुख सूर्य, और उत्तर का ब्रह्मा, पश्चिम का विष्णु और दक्षिण का रुद्र का प्रतीक होता है। मध्य का गोल भाग ब्रह्माण्ड (विश्व) का बोधक है। इसका तात्पर्य यह है कि ये चारों देवता ईश्वर के ही भिन्न-भिन्न नामों के रूप हैं। शिव की विशालकाय त्रिमूर्तियां चित्तौड़गढ़ के दो मन्दिरों में हैं, जिनमें से परमार राजा भोज के बनवाये हुए त्रिभुवन नारायण (समिद्धेश्वर) के मन्दिर की मूर्ति सबसे प्राचीन है। इस मन्दिर का महाराणा मोकल ने जीर्णोद्धार करवाया था जिससे इसे मोकल जी का मन्दिर भी कहते हैं।

शैव-सम्प्रदाय वाले शिव के कई अवतार मानते हैं, जिनमें से लकुलीश अवतार का प्रभाव मेवाड़ में विशेष रहा। श्री एकलिङ्ग जी, मैंनाल, तिलिस्मा[3] बाड़ोली आदि स्थानों के प्राचीन शिव मन्दिर इसी सम्प्रदाय के हैं।

सूर्य-पूजा का भी यहाँ अधिक प्रचार था, जिसके कई प्रमाण मिलते हैं। चित्तौड़गढ़ का प्रसिद्ध कालिका माता का मन्दिर सूर्य का ही मन्दिर था। वर्तमान में वहाँ जो कालिका की मूर्ति है, वह पीछे से बिठलाई गई है। आहाड़, नांदेसमा आदि स्थानों में प्राचीन समय के सूर्य के मन्दिर और मूर्तियाँ मिली हैं। सूर्य की मूर्ति खड़ी हुई द्विभुज होती है, दोनों हाथों में कमल, छाती पर कवच और सिर पर किरीट होता है। राणकपुर के जैन मन्दिर के निकट एक

प्राचीन सूर्य मन्दिर है, जिसके बाहरी भाग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य की मूर्तियाँ बनी हुई हैं, इन सबके नीचे सात घोड़े हैं।

नगरी में एक स्तूप और मौर्य राजा अशोक के समय की लिपि में खुदा शिलालेख का एक छोटा-सा टुकड़ा मिला है, जिसमें (स) व भूतानं दयाथं का (सर्व जीवों की दया के लिए) लेख है। जीव दया की प्रधानता बौद्ध और जैन धर्म दोनों में समान रूप से रही है, अतः स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि यह लेख किस धर्म से सम्बन्धित है। चित्तौड़ किले पर जयमल की हवेली के सामने वाले तालाब के पास छः बौद्ध-स्तूप मिले हैं। इन स्तूपों से निश्चित है कि मेवाड़ में बौद्ध-धर्म का आंशिक प्रभाव अवश्य रहा था।

मेवाड़ में अनेकों जैन-मन्दिर बने हुए हैं पर विक्रम की दसवीं शताब्दी से पहले का बना कोई जैन मन्दिर इस समय मेवाड़ में विद्यमान होना ज्ञात नहीं है। चित्तौड़गढ़ का प्रसिद्ध जैन कीर्तिस्तंभ, ऋषभदेव, करेड़ा, (भूपाल सागर) कुंभलगढ़, चित्तौड़गढ़ के सत-वीस देवता आदि अनेक प्रसिद्ध मन्दिर मेवाड़ में धर्म के उत्कर्ष के सूचक हैं।

मेवाड़ में जैन और बौद्ध-धर्म का प्रभाव वि० सं० 1028 की प्रशस्ति में दिए गए शास्त्रार्थ से तो विदित होता ही है पर अन्य प्रमाणों से भी स्पष्ट है।

प्रसिद्ध जैन साधु इन्दु (योगीन्दु) उच्चकोटि के विद्वान्, व्याकरण और काव्यकार थे। ये सम्भवतः चित्तौड़गढ़ के निवासी थे। इनका समय विक्रम की दसवीं शती है। इनकी कृतियाँ परमात्म-प्रकाश दोहा[4] तथा योगसार-दोहा[5] हैं। इसी समय जैन साधु रामसिंह की कृति पाहुड़-दोहा[6] में मिलती है। महारावल जैत्रसिंह के समय (वि० सं० 1270-1309) में आहाड़[7] में दो प्रसिद्ध ग्रंथों—ओघ निर्युक्ति (वि० सं० 1284 में ताड़-पत्र पर लिखित) बयजल द्वारा लिखित पाक्षिक वृत्ति (वि० सं० 1309 में ताड़-पत्र पर लिखित)—की रचनाएँ हुईं। महारावल तेजसिंह (वि० सं० 1317-1324) के समय में आहाड़ में 'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र-चूर्णि' नामक ग्रंथ वि० सं० 1317 में ताड़-पत्र पर लिखा गया, जो पाटण के ज्ञान-भण्डार में रक्षित है। इस समय के प्रसिद्ध जैन मुनि, विद्वान् और कवि रत्न प्रभसूरि[8] का महारावल तेजसिंह की माता व उसके मंत्रियों पर पर्याप्त प्रभाव था।[9] रावल समरसिंह (वि० सं० 1358) के प्रसिद्ध कवि वेद शर्मा थे।

गोरखनाथ की गोरखपंथी शाखा और उससे निकले हुए अघोर पंथ का भी मेवाड़ प्रदेश अखाड़ा रहा। उदयपुर के निकट तितरड़ी की प्रसिद्ध गुफा गोरखपंथियों से सम्बन्धित कही जाती हैं। इसके समीप का ग्राम समीना खेड़ा अब भी ओघड़ बाबा का अखाड़ा है। कदाचित गुरु भण्डार, चुणकरनाथ, चरपट नाथ, जालंध्री पाव, धूंधलीमल, पृथ्वीनाथ, बालनाथ ओघड़ पंथ के प्रमुख

प्रवर्त्तक मोतीनाथ, सती कणेरी, शंभुनाथ, सिद्ध गवरी, सिद्ध घोड़ा चोली, सिद्ध हरवाली आदि में से कुछ यहाँ से अवश्य सम्बन्धित थे और कुछ ने अपनी रचनाओं का यहीं से प्रसार किया होगा।

लाखा[10] और कुंभा[11] (वि० सं० 1439-1525) के समय में मेवाड़ की संस्कृति, साहित्य व कला चरमोत्कर्ष पर थी। इस समय को सहज ही मेवाड़ प्रदेश का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस काल में जिन सांस्कृतिक भावनाओं का संचार हुआ, साहित्य के जिन विविध अंगों की उन्नति हुई और कलाओं—संगीत, चित्र, शिल्प, मूर्ति, स्थापत्य, युद्ध-कला आदि का जो विकास हुआ इन सबने मेवाड़ को सामान्य भूमि से बहुत ऊपर उठा दिया और मेवाड़ ने ऐसी स्वतन्त्र व प्रबल सत्ता का स्वरूप धारण कर लिया कि फिर यवन आक्रमणकारी सुख की नींद नहीं सो पाए।

कुंभा के पिता मोकल[12] स्वयं विद्यानुरागी थे। उनके राज्य में महेश ने कवि प्रशस्तिकार व दर्शनशास्त्र के विद्वान् के रूप में सम्मान पाया था। उस समय के शिलालेखों से स्पष्ट है कि कविराज वाणी विलास योगीश्वर और एक नाथ प्रसिद्ध कवि, बीसल प्रसिद्ध शिल्पकार तथा फना व मन्ना प्रसिद्ध सूत्रधार थे।

कुंभा स्वयं एक महान् भक्त, कलाकार, संगीतकार, संगीतज्ञ, संगीतशास्त्री[13] काव्यकार के साथ-साथ योग्य शासक, नीतिज्ञ, कुशल सेनानी तथा वीर योद्धा भी थे। वे कलाकारों, विद्वानों, पण्डितों, कवियों, संगीतज्ञों, शिल्पियों, मूर्तिकारों, सैनिकों आदि के महान् पोषक और प्रशंसक थे। वे वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद्, व्याकरण, राजनीति आदि के विद्वान् थे।[14] वे शिल्प व वस्तु शास्त्र के भी विद्वान् थे[15] और कीर्तिस्तम्भों पर उन्होंने स्वयं एक ग्रंथ रचा था।[16] कुंभा उच्चकोटि के नाट्यकार भी थे।[17] शासन-व्यवस्था पर उन्होंने 'सुप्रबन्ध' ग्रंथ लिखा, चण्डी शतक का अनुवाद किया और गीत-गोविन्द पर रसिक प्रिया टीका तैयार की। उन्होंने अनेक स्तुतियों की रचना की, जिन्हें वे स्वयं विभिन्न रागों व तालों में गाया करते थे। इनके समय के शिल्पकला के सूत्रधार मण्डन ने 'देवता मूर्ति प्रकरण' प्रासाद-मण्डन, वास्तु-मण्डन, वास्तु-शास्त्र, राजवल्लभ, रूप-मण्डन, रूपावतार और वास्तुसार की रचना की। इनके भ्राता नाथा ने 'वास्तुमंजरी' तथा उनके आत्मज गोविन्द ने 'उद्धार-धोरणी,' 'कलानिधि,' और 'द्वार-दीपिका' की रचना की। अत्रि और उनका पुत्र महेश उस समय के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार थे। मोकल के पिता लाखा से लेकर कुंभा तक महान् विद्वान झोंटिंग भट्ट अपने काव्य व प्रशस्तियों के लिए प्रसिद्ध रहे। इस समय वैद्यक व ज्योतिष के ग्रंथों की भी रचनाएं हुईं।[18] इस समय (वि० सं० 1420) तक महान् कवि और वैद्य शार्ङ्गधर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'शार्ङ्गधर-संहिता'

और 'संगीत रत्नाकर' समाप्त कर लिए थे। हम्मीर रासो और हम्मीर काव्यं की भी रचनाएँ हो चुकी थीं। वोगसा खाँप के चारण कवि बारूजी (वि० सं० 1520) महाराणा कुंभा के आश्रित थे।[19]

धार्मिक अधिकार किसी वर्ग-विशेष का नहीं, मनुष्य मात्र का है; कोई भी कार्य हेय नहीं, वह भगवद्‌भक्ति में बाधक नहीं है। अपना कर्म करते रह कर ही प्राप्ति की जा सकती है। नामदेव ने छींपा कर्म करते हुए, कबीर ने जुलाहा-कर्म करते हुए, सना ने नाई का काम करते हुए अपनी भक्ति और साधना का प्रभाव जनता पर डाला। इसी प्रभाव ने धन्ना जैसे एक जाट कृषक को राजस्थान का महान भक्त बनाया (वि० सं० 1472), रैदास जैसे चमार को (वि० सं० 1485-1585), भक्तों के ऊंचे आसन पर आरूढ़ किया। पीपा को (वि० सं० 1480-1530) राजमहल से निकाल कर द्वारका में भिक्षुक का काम कराया। राजरानी मीरा ने मेवाड़ के राजमहलों की मर्यादा तोड़ साधु-सन्तो के बीच बैठ भगवद्‌भक्ति की। इस समय भावनाओं के परिवर्तन के साथ-साथ भाषा का भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। मीरा के पदों की भाषा में राजरानी पर ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। चारणों व भाटों की साहित्यिक परम्परा और भाषा भी इसी समय अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ग्रहण करती दिखलाई पड़ती है। इसी समय वि० सं० 1575 के आस-पास 'डिङ्गल गजब डोकरो डाकी, पिङ्गल पूंगल नाजुक नार' की ध्वनि सुनाई पड़ती है और राजस्थानी की दो काव्यगत शैलियाँ—डिङ्गल और पिङ्गल—सन्मुख हो आती है।

मेवाड़ के भक्ति काल के राजदरबारी कवियों में कुराबड़-राव के आश्रित कृपाराम के भक्ति विषयक पद तथा सलूबर-राव के आश्रित गोप के गीत, पद ओपा के स्फुट तथा कान्हा के भक्ति विषयक पद मिलते हैं।

दादू, निरंजन, राम स्नेही आदि कई पंथों ने मेवाड़ के सांस्कृतिक विकास में योग दिया है। राम स्नेही पंथ का प्रादुर्भाव तो मेवाड़ में ही हुआ। इस पंथ के आदि गुरु संतदास (वि० सं० 1806 में स्वर्गवासी) मेवाड़ के दांतड़ा ग्राम के रहने वाले थे। इनके ही शिष्य कृपाराम की प्रेरणा से रामचरणदास नेराम-स्नेही पंथ की स्थापना की। महाराणा सज्जन सिंह (वि० सं० 1916-1941) तक मेवाड़ में कई संत, साधु, भक्त, पण्डित, साहित्यकार आदि हो गये हैं, जिन्होंने मेवाड़ के सांस्कृतिक –साहित्यिक विकास में अपनी ओर से बहुत-कुछ दिया है। इनमें से कुछ की ही रचनाएँ मिल पायीं हैं और कुछ की सूचनाएँ मात्र ही मिलती हैं। रायमल रासों हरिवंश महाकाव्य (संस्कृत) और सौदा बारहठ जमना[20] तथा केसरिया शाखा के चारण हरिदास (वि० सं० 1566-84)[21] . आशिया शाखा के चारण पीथा (वि० सं० 1628-53) की रचनाएँ नहीं के बराबर ही मिलती हैं।[22]

महाराणा उदयसिंह (राज्य वि० सं० 1594-1628) महाराणा संग्राम सिंह प्रथम (सांगा) के पुत्र थे। इनके समय में चित्तौड़ का तीसरा शाका हुआ। ये कविता करते थे।[23] इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र महाराणा प्रताप सिंह (वि० सं० 1597-1653) डिंगल में कविता करते थे। इनके रचे वे दोहे, राजस्थान में बहुत प्रचलित हैं, जो इन्होंने बीकानेर के राठौड़ पृथ्वीराज को उनके एक पत्र के उत्तर में लिख भेजे थे। इन्होंने अपने घोड़े चेतक की स्मृति में एक शोक-काव्य (Elegy) भी रचा था, जिसमें 100 कवित्त (छप्पय) थे। इनके पुत्र महाराणा अमर सिंह (वि० सं० 1616-1676) न्यायी, सुकवि और विद्वानों के आश्रयदाता थे। इन्होंने बिखरे रासो का संग्रह-कार्य करवाया था। इनकी रची रचनाएँ नहीं मिलती। केवल दो दोहे मिलते हैं, जो इन्होंने अपने मित्र अब्दुल रहीम खानखाना को लिख भेजे थे, जिनके उत्तर में खानखाना ने एक दोहा लिख भेजा था, जो राजस्थान में बहुत प्रचलित है। इन्हीं की आज्ञा से बालाचार्य के पुत्र धन्वत्तरि ब्राह्मण ने तत्कालीन मेवाड़ी में अमर विनोद नामक ग्रंथ रचा, जिसमें हाथियों से सम्बन्धित कई ज्ञातव्य हैं।

बारहठ गोविन्द (वि० सं० 1684-1709)[24] के बारे में विशेष जानकारी नहीं मिलती। दयालदास ने वि० सं० 1680 के लगभग राणा रासो तथा भीण्डर के जैन उपाश्रय की परम्परा से सम्बन्धि पन्यास (पण्डित) दौलत विजय (दलपत) ने वि० सं० 1725 के लगभग खुम्माखरास की रचना की।

महाराणा राजसिंह (वि० सं० 1686-1737) स्वयं कवि[25] और कवियों के आश्रयदाता थे। इनके समय में सस्कृत का सुप्रसिद्ध राज प्रशस्ति महाकाव्य रचा गया जो प्रसिद्ध सरोवर राजसमन्द की पाल पर पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण है। यह भारत भर में सबसे बड़ा शिलालेख तथा शिलाओं पर खुदे हुए ग्रन्थों में सबसे बड़ा है। इसमें 24 सर्ग और 1106 श्लोक हैं। यह काव्य कोरा कल्पना-प्रसूत नहीं है। यह इतिहास और साहित्य दोनों दृष्टियों से महत्व का है। तत्कालीन सांस्कृतिक सम्पन्नता के अध्ययन की दृष्टि से भी इसके महत्त्व को नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता है। अपने-आप में महत्वमय राज प्रशस्ति महाकाव्य महाकवि रणछोड़ भट्ट की कृति है। ये कठौड़ी कुलोत्पन्न तेलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मधुसूदन और इनकी माता का नाम वेणी था। मेवाड़ राज्य से भट्ट के घराने का बहुत पुराना सम्बन्ध था। इनके पूर्वज लक्ष्मीनाथ (प्रथम) व छीतू भट्ट को महाराणा उदयसिंह ने उदयसागर की प्रतिष्ठा (वि० सं० 1622) के शुभावसर पर तुलादान व भूखाड़ा गांव दिया था। महाराणा उदयसिंह से तीसरी पीढ़ी में महाराणा अमर सिंह (प्रथम) ने भी इसी लक्ष्मीनाथ (प्रथम) को होली गांव प्रदान किया था। लक्ष्मीनाथ (प्रथम) के पुत्र रामचन्द्र (द्वितीय) के तीन पुत्रों—कृष्ण, माधव

(द्वितीय) और मधुसूधन में से कृष्ण भट्ट के पुत्र लक्ष्मीनाथ (द्वितीय) ने महाराणा जगत सिंह (प्रथम) (वि० सं० 1684-1709) द्वारा बनवाये गए उदयपुर के जगन्ननाथ राय के मन्दिर की प्रशस्ति बनाई थी, जो इसी मंदिर में उत्कीर्ण है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा (सं० 1709 वैशाखी पूर्णिमा, गुरुवार) के शुभावसर पर कृष्ण भट्ट को महागोदान प्राप्त हुआ था। मधुसूदन संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान तथा महाराणा राजसिंह के विश्वास पात्र थे। महाराणा राजसिंह की माता जनादे ने चाँदी का तुलादान किया। उस समय मधुसूदन को गजदान के निष्क्रय स्वरूप 500 रुपये की प्राप्ति हुई। सं० 1719 में महाराणा ने इन्हें सोने के पलान सहित नवल नामक सफेद घोड़ा दिया। इस दान के एवज में मधुसूदन को नौ हजार रुपये मिले।

राज प्रशस्ति के अतिरिक्त रणछोड़ ने दो प्रशस्तियाँ और भी लिखी थी। महाराणा ने एक लिङ्ग जी के पास वाले इन्द्र सरोवर के जीर्ण बाँध के स्थान पर एक नया बाँध बनवाया था (सं० 1729 में पूर्ण), इसके लिए महाराणा ने प्रशस्ति लिखवाकर उसे शिला पर खुदवाने की आज्ञा दी थी। सं० 1732 में लिखी दूसरी प्रशस्ति देबारी के दरवाजे से थोड़ी दूर त्रिमुखी बावड़ी में लगी हुई है।

रणछोड़ भट्ट ने अमर काव्य[26] नाम का संस्कृत भाषा में ग्रंथ भी बनाया था। इसकी छंद संख्या लगभग 250 है। आकार में यह राजप्रशस्ति से छोटा पर काव्यत्व व भाषा की दृष्टि से अधिक उत्तम है। उसकी अपेक्षा इसकी विषय-सामग्री अधिक व्यापक भाषा अधिक प्रौढ़ और वर्णन-शैली अधिक व्यवस्थित है। डॉ० ओझा आदि विद्वानों ने इसे महाराणा अमरसिंह (प्रथम) (स० 1653-76) के समय की रचना माना है, जो ठीक नहीं है।

इसी समय मारवाड़ के कुचामण से तीन कोस उत्तर में रत्नू शाखा के चारणों के ग्राम जिलिया चारणावास के निवासी कम्मा नाई ने महाराणा राजसिंह को अपने पूर्वजों का गौरव-स्मरण कराते हुए उन्हें दिल्ली जा बादशाह के सामने झुकने से रोका।[27] महाराणा राजसिंह के आश्रित राव किशोर दास ने 'राजप्रकाश' (सं० 1719) की रचना की। इसमें राजसिंह के विलास-वैभव और शौर्य-पराक्रम का वर्णन है। कुल मिलाकर 132 छंदों में ग्रंथ समाप्त हुआ है। यह राजस्थानी की बहुत उच्चकोटि की साहित्यिक रचना है। जैन कवि मान ने 'राजविलास' (सं० 1735-37) की रचना की। इसी समय पं० देवीदास के पुत्र श्री लाला भट्ट ने भी महाराणा राजसिंह के संबंध में 101 श्लोकों का एक संस्कृत काव्य रचा। महाराणा राजसिंह ने मुरली कृत अश्वमेघ की कथा को लिपिबद्ध करवाया था।[28] ठिकाना देवगढ़ के आश्रित चारण जोगीदास का 'हरिपिंगल-प्रबन्ध' (सं० 1721) जैन यति उदयराज

(सं०1750)[29] कोठरिया के रावत उदयभान के आश्रित मुरलीकृत 'अश्वमेघ-यज्ञ' (सं० 1755) व 'त्रिया विनोद' (सं० 1763) ख्याति प्राप्त कर चुके थे। कविराज करणीदान ने महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (सं 1967-90) के समय किसी काव्य की रचना की थी।

महाराणा जगतसिंह दूसरे के आश्रित कवि नंदराम ब्राह्मण कृत 'शिकार भाव' (सं० 1790) और जगविलास (सं० 1802) अच्छी रचनाएं हैं। शिकार भाव में महाराणा जगतसिंह की शिकार का जगविलास उनकी दिन-चर्य्या, राज्य-वैभव तथा जगनिवास महल की प्रतिष्ठा आदि का विस्तृत वर्णन है। ये दोनों ही ग्रंथ पिंगल में हैं और साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि के होने के साथ-साथ इतिहास की दृष्टि से भी बड़े महत्व के हैं।[30] महाराणा जगत सिंह (द्वितीय) के दीवान देवकर्ण पंचोली कायस्थ कृत 'वाराणसी-विलास' (सं 1803) उत्तम रचना है। जैन यति हेमरत्न सूरि (सं० 1765) ने महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय में 'पद्मनी चौपाई' ग्रंथ की रचना की।[31] इसी नाम का और करीब-करीब इसी तरह का एक ग्रंथ लालचंद नाम के किसी कवि का बनाया हुआ भी प्राप्त हुआ है। इन दोनों की हस्त-लिखित प्रतियां (स्वर्गीय) डॉ० मोतीलाल जी मेनारिया के पास देखने में आई थी।

रामकृष्ण और नाथूराम महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) (वि० सं० 1790-1808) के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार थे। अहमदाबादी दलपतिराय महाजन व वंशीधर श्रीमाली का 'अलंकार-रत्नाम्बर' सं० 1798 की रचना है। कवि नेकराम ने 'जगद्विलास' व विश्वनाथ ने 'जगत-प्रकाश' की रचना की। वि० सं० 1817 में कवि सोमेश्वर ने 'राज्याभिषेक काव्य' की संस्कृत में रचना की और उसी परम्परा को वैकुण्ठ पल्लवीवाल ने 'अमरसिंह 'राज्याभिषेक काव्य' की रचना कर निभाया। पं० मंगल ने 'अमर नृप-काव्य-रत्न' की रचना भी इसी समय की।

कवियों के आश्रयदाता और कवि महाराणा अरिसिंह (राज्याभिषेक सन् 1761) ने किशनगढ़ के प्रसिद्ध कवि नागरीदास के 'इश्क-चमन' के उत्तर में रसिक चमन रचा। इन्होंने कहा भी है—

इस्क चमन इस्कीन को, करयो नागरीदास।
रसिक चमन अरसी नृपति, की नो अधिक प्रकास॥

इसी समय किसी अज्ञात कवि द्वारा रचित 'सुदामा-चरित' प्राप्त होता है जो नरोत्तमदास के 'सुदामा-चरित' से सर्वथा भिन्न है।

वीर, विद्वान और काव्य निपुण महाराणा भीमसिंह (सं० 1834-1885) की कृष्णभक्ति विषयक कतिपय कविताएं मिलती हैं। इन्हीं के सबसे बड़े

कुंवर पर पिता की विद्यमानता में ही स्वर्गवासी अमरसिंह (सं० 1880) चारण फतहकरण[33] वैरागी फतेराम, कविया करणीदान, आढ़ा किसना, आशिया मानसिंह[34] आदि अपनी रचनाओं द्वारा प्रसिद्ध हो गये। आढ़ा किसना के भीम विलास, चण्डी-शतक, रघुवर जसप्रकास तथा रामदान चारण (लालस) का भीमप्रकाश नामक ग्रंथ मिलता है। मेवाड़ के इतिहास लेखक वेनीदास या वेनीदान उदयपुर के वंश-परम्परागत बड़वा या ख्यात लिखने वाले थे जो महाराणा भीमसिंह जी के राज्याकाल में विद्यमान थे। कर्नल टॉड ने इनसे मेवाड़ के महाराणाओं की वंशावली कई ऐतिहासिक वृतांत मालूम किए थे।

रणवीर भट्ट ने जयविलास काव्य की रचना की जिसमें महाराणा जयसिंह और उनके बाद के मेवाड़ के शासकों का यश वर्णन है। रॉयल एशियाटिक सोसायटी लंदन के टॉड-संग्रह में इसकी प्रति प्राप्त है।

इसी समय राजस्थानी संत परम्परा में दीन दरवेश का श्री एकलिंग जी (उदयपुर)[35] में प्रादूर्भाव हुआ। ये जाति के लोहार थे। इनका जन्म संवत् अज्ञात है। इनकी रचना से इनका निर्माण काल सं० 1863-88 निश्चित होता है। चम्बल में इनके स्नान करते समय पानी में डूबकर मरने की घटना सं० 1890 के आस-पास की कही जाती है। इन्होंने तीन हजार से कुछ अधिक फुटकर छंद लिखे हैं। व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि पद्माकर ने उदयपुर में ही गज गौर पर रचना की।[36] महाराणा जवान सिंह साधिकार व्रजभाषा में 'व्रज राज नाम से कविता करते थे, जिनका संग्रह 'व्रज राज पद्यावली' में है।[37] वि० सं० 1897 में जन्मे कवि गुमानसिंह, वाठरड़ा (उदयपुर) मेवाड़ी और व्रजभाषा दोनों में रचना करते थे और अधिकतर आध्यात्मिक कविताएं लिखते थे। इनके रचे ग्रंथ हैं—मोक्ष भवन, मनीषा लक्ष चन्द्रिका, योग भानु प्रकाशिका, गीता सार, योगांक शतक, सुबोधिनी, रत्न सार, तत्व बोध, रामरत्न माला, लय योग बत्तीसी, समय सार बावनी, अद्वैत बावनी आदि।[38] गुमानसिंह जी के भतीजे बावजी चतुरसिंह की रचनाएं भी आध्यात्मिक विषयक कविताओं के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। इन्होंने 15 मौलिक ग्रंथ (8 पद्य और 7 गद्य) लिखे हैं। गीता, योग सूत्र, सांख्यकारिका, तत्व समास, महिम्न स्तोत्र, चन्द्र शेखर स्तोत्रम् के इन्होंने मेवाड़ी में अनुवाद किए हैं। इनके जन्म शती व 1980 में महाराणा मेवाड़ पब्लिकेशन ट्रस्ट उदयपुर द्वारा सभी ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी चतुर-चितामणि और अलख-पच्चीसी[39] मेवाड़ अंचल की जनता के गले के हार बनी हुई हैं। इसी संदर्भ में पं० गिरधारीलाल शास्त्री (उदयपुर) का नामोल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है। इन्होंने मेघदूत गंगा लहरी, दूर्गाजी, उमर खय्याम की रुबाइयों के मेवाड़ी में अनुवाद किए हैं।

महाराणा सज्जनसिंह के समय तक मेवाड़ में व्रजभाषा का विकास अपनी

चरमसीमा प· पहुंचता हुआ दिखलाई पड़ता है। इनका समय प्राचीन संग्रह व वर्तमान विकास का युग था। इनके गुरु भरतपुर निवासी जानी बिहारीलाल स्वयं संस्कृत, हिन्दी, फारसी व अंग्रेजी के विद्वान थे। सज्जनसिंह साहित्य, कला, इतिहास और विद्वानों के प्रेमी एवं प्रशंक होने के साथ-साथ इनके आश्रय दाता भी थे। ये स्वयं सिद्धहस्त कवि[40] का काव्य-मर्मज्ञ व गायक थे। इन्होंने हस्त-लिखित ग्रंथों, प्राचीन चित्रों और विविध ऐतिहासिक सामग्रियों के संग्रहालयों की स्थापनाएं कीं, कवि सम्मेलनों के विशाल आयोजन किए भारतेन्दु हरिश्चन्द का भव्य स्वागत किया।[41] भारतेन्दु के प्रभाव से सरकारी कार्यालयों और अन्य विविध विभागों के नाम हिन्दी में दिए गए। स्वामी दयानन्द सरस्वती को महाराणा ने अपना गुरु स्वीकार किया। संवत् 1939 के भाद्रपद के शक्ल पक्ष में उदयपुर के सज्जन निवास के बाग के नौलखा स्थान में स्वामीजी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका लिखी थी[42]

महाराणा सज्जनसिंह के आश्रम में रहते हुए अनेकानेक कवियों ने शतश: महत्वपूर्ण काव्य-ग्रंथों का प्रणयन किया जो उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान व महाराणा के निजी पुस्तकागार में सुरक्षित हैं। यथा सज्जन प्रकाश (मदनेश)[43] वि० सं० 1934, सज्जन विलास (वल्लभ)[44] वि० सं० 1935, 'सज्जन विनोद' (मारकण्डे लाल)[45] वि० सं० 1937; स्वयं महाराणा सज्जन सिंह के स्थायी आश्रय में कई चारण व ब्रह्म भट्ट कवि रहते थे जिनमें से अग्रांकित के श्रीनाम लिए जा सकते हैं—

प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ रत्न के लेखक कविराजा श्यामलदास (सज्जन-यश-वर्णन रचना काल सं० 1935 बारहठ रामसिंह, आढ़ा रामलाल, दधिवाड़िया चमनसिंह बारहठ चण्डीदान, महियारिया मोड़सिंह बारहठ कृष्णसिंह उज्ज्वल फतह करण[46] वामी गणेशपुरी, कविराज बख्तावर[47] आदि।

महाराणा सज्जनसिंह के राज्यकाल (वि० सं० 1931-1941 के पश्चात साहित्य की राजकीय परम्पराएं भी टूटने लगती हैं और साहित्य एक स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त कर लेता है।

अति संक्षेप में यही है मेवाड़ का सांस्कृतिक व साहित्यिक सर्वेक्षण।

कृपया संबंधित फुटनोट अगले पृष्ठ पर देखें।

फुटनोट

1. इनकी रानी चौहान राजा जेजय की पुत्री थी। राजा नरवाहन स्वय संस्कृति, साहित्य व कला के महान पोषक थे जैसा कि राजा शालिवाहन (ये नरवाहन के बाद हुए थे) के वि० स० 1030 के एक अन्य शिलालेख से स्पष्ट होता है। (इस संदर्भ में विशेष विवरणार्थ दृष्टव्य : जर्नल आफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, जि० 22, पृष्ठ 166)
2. इसके रचयिता अमर स्वयं उच्च कोटि के कवि थे जैसा कि इस प्रशस्ति से ही ज्ञात होता है।
3. बीजोल्यां से अनुमानतः 5 मील के अन्तर पर जाड़ोली ग्राम है। जाड़ोली से पूर्व में 6 मील की दूरी पर तिलिस्मां ग्राम है, यहाँ भी कई प्राचीन स्थल हैं, इनमें से प्रमुख भवेश्वर (तलेश्वर) शिवालय है। इसके द्वार पर भी लकुलीश की प्रतिमा विराजमान है और ऊपर नवग्र बने हैं यह वि० सं० की ग्यारहवीं शताब्दी का बना प्रतीत होता है।
4. इसके कुछ अंशों के लिए दृष्टव्य : राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्य-धारा प्रथम संस्करण पृ० 240-251, यह कृति ए. एन. उपाध्ये द्वारा सम्पादित होकर रामचन्द्र जैन-शास्त्र-माला, वम्बई के अन्तर्गत 1937 ई० में प्रकाशित हो चुकी है।
5. इसके कुछ अंशों के लिए दृष्टव्य : वही पृ० 250-253, यह कृति भी उपाध्ये द्वारा सम्पादित होकर रामचन्द्र जैन शास्त्र माला-10, बम्बई 1930 ई० में प्रकाशित हो चुकी है।
6. इसके कुछ अंशों के लिए दृष्टव्य : वही पृ० 252-261, यह कृति करंजा जैन-ग्रंथ माला, करंजा (बरार) के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुकी है।
7. आहाड़ के समीप धूलकोट में लिप्त तांबावली नगरी 2000 ई० पूर्व की सभ्यता की द्योतक है।
8. इन्होंने वि० सं० 1330 में चीखा में प्राप्त प्रशस्ति की रचना की, जिसे इनके शिष्य पार्श्वचन्द्र ने शिला पर लिपिबद्ध किया, केल्हि सिंह ने उसे खोदा और सूत्रधार देल्हण ने उसे स्थापित किया। (इस विवरण से प्रशस्तियों की रचना से लेकर स्थापन तक की कला का परिचय प्राप्त होता है।)
9. दृष्टव्य : चित्तौड़गढ़ की गम्भीरी नदी के पुल के नीचे प्राप्त वि० सं० 1324 का शिलालेख।

10. ये वि० सं० 1439 में मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बैठे और सम्वत् 1454 में इनका देहान्त हुआ।
11. ये वि० सं० 1490 में सिंहासन पर बैठे और सं० 1525 में अपने कुल कलंकी ज्येष्ठ पुत्र ऊदा के हाथों मारे गए, जो राज्य के लोभ में पिताश्री को मारकर सिंहासन पर बैठ गया।
12. ये वि० सं० 1478 में सिंहासन पर बैठे और वि० सं० 1490 में महाराणा लाखा के पासवानिये पुत्र चाचा और मेरा के हाथों दगा से मारे गए।
13. इनके रचे संगीत सम्बन्धी संगीतराज, संगीत मीमांसा और सूड़ प्रबन्ध नामक तीन ग्रंथों का अब तक पता चला है।
14. दृष्टव्य : एक लिङ्ग महाकाव्य।
15. दृष्टव्य : उनके बनवाये कीर्ति स्तंभ का एक टूटा शिला-लेख।
16. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ० 1118-29.
17. उनके लिखे चार नाटकों से विविध भाषाओं—कर्णाटी, महाराष्ट्री, मेवाड़ी आदि—पर उनके असाधारण अधिकार का परिचय प्राप्त होता है। राजस्थानी की मेवाड़ी में साहित्य-रचना का कदाचित यह सबसे पहला ऐतिहासिक उल्लेख है।
18. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ० 1118-29.
19. इन्हीं बारूजी के रचे 'कामधेनु तंडव करिय' वाले पूरे छंद के लिए दृष्टव्य डॉ० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा (प्रथम संस्करण) पृ० 222.
20. इनके एक गीत के लिए दृष्टव्य : महाराणा यश प्रकाश, पृ० 70-71 गीत सं० 35 (यह गीत इन्होंने सांगाजी को उस समय सुनाया था जब बाबर से युद्ध में महाराणा को मूर्छा आने पर इन्हें साथ ले आए और बसवा में उनकी मूर्छा भंग हुई।)
21. महाराणा सांगा जैसे वीर थे वैसे ही व दान्य (दानी) भी थे। इन्होंने इनको चित्तौड़ का राज्य दान कर दिया था। जिसपर इन्होंने कतिपय गीत रचकर महाराणा के यश को चिर स्थायी कर दिया। इनके रचे दो गीतों के लिए दृष्टव्य : महाराणा यश प्रकाश पृ० 58-60, गीत संख्या 27 व 28.
22. इनके रचे एक गीत के लिए दृष्टव्य : महाराणा यश प्रकाश, पृ० 85-86. गीत सं० 43.
23. इनके डिङ्गल में रचे दो गीत कवि गिरवर दान ने अपने शिवनाथ प्रकाश ग्रंथ में उद्धृत किए हैं। ये गीत प्राचीर लिखित संग्रह-ग्रंथों में भी देखने में

आते हैं।

24. इनके रचे एक गीत के लिए दृष्टव्य : महाराणा यश प्रकाश, पृ० 154-55, गीत सं० 177.
25. इनका रचा 'पूजो पांव कवीसरा' वाला छप्पय मिलता है।
26. इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कवि ने महाराणा राजसिंह के पौत्र अमर सिंह (द्वितीय) के शासन काल (सं० 1755-1767) में किया था पर पूरा नहीं हो पाया। इसीलिए इसमें मेवाड़ के इतिहास के आदि से महाराणा राजसिंह (सं०1709-37) तक के महाराणाओं ही का वर्णन है। इस ग्रन्थ की चार हस्त लिखित प्रतियां सरस्वती भण्डार, उदयपुर में उपलब्ध हैं।
27. दृष्टव्य : महाराणा यशप्रकाश पृ० 167-68, छप्पय सं० 186 इन्हीं के रचे एक गीत के लिए दृष्टव्य : वही पृ० 168
28. दृष्टव्य : अश्वमेघ की कथा, ग्रंथ सं० 447 प्रा० वि० प्र०, उदयपुर
29. इनके एक छन्द के लिए दृष्टव्य : राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा पृ० 229
30. उद्धरण हेतु दृष्टव्य : मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य 245
31. इनके एक छंद के लिए दृष्टव्य : राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा पृ० 23
32. दृष्टव्य : राजस्थान के राजघरानों की हिन्दी सेवा पृष्ठ 28-29 तथा ब्रजराज-काव्य-माधुरी (महाराणा जवानसिंह) पृष्ठ 155
33. ये राजस्थानी गद्य-पद्य के लेखक थे पर इनकी पंचाख्यान टीका की सूचना ही मिलती है।
34. इन्होंने डिंगल में किसी रूपक की रचना की थी जिसकी प्रति ओझाजी के संग्रह में थी।
35. उदयपुर से 14 मील उत्तर में मेवाड़ के महाराणाओं के इष्टदेव श्री एक लिंगजी का मन्दिर है। जिस ग्राम में यह मन्दिर अब स्थित है उसे कैलाशपुरी कहते हैं।
36. इसके एक छंद के लिए दृष्टव्य : 'लोककला' का गणगौर अंक, पृ०17-18
37. यह साहित्य-संस्थान, उदयपुर से 'ब्रजराज-काव्य-माधुरी के नाम से प्रकाशित हो चुकी है।
38. इनमें से कतिपय ग्रंथ लेखिका के निजी संग्रह में रक्षित हैं।
39. दृष्टव्य : लेखिका की रचना। शिक्षक दिवस प्रकाशन 1980 के अतर्न्गत प्रकाशित 'अंतस रा आखर' पुस्तक में पृ० 58-60
40. इनकी कविताओं का संग्रह 'रसिक विनोद' वर्षों पूर्व प्रकाशित हुआ।
41. भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को महाराणा ने 10,000 रुपए और सिरोपाव

आदि देकर सम्मानित किया था।

42. दृष्टव्य : सत्यार्थ प्रकाश (संस्करण वि० सं० 2030) भूमिका भाग पृ० 6

43. ये मुगल सम्राट अकबर के दरबारी कवि नरहरि भाट की वंश-परम्परा में दौलतराम के पुत्र थे। (सज्जन प्रकाश की हस्तलिखित प्रति, पत्र 16-19)

44. ये मालवा के रहने वाले ओसवाल महाजन थे। इनके पिता का नाम अनूपचन्द और इनका वास्तविक नाम बालचन्द था। (सज्जन विलास की हस्तलिखित प्रति पृ० 28)

45. पिछले दिनों मारकण्डेय कृत सज्जन विनोद (डॉ०) नेमनारायण जोशी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है।

46. इनका 'पत्र प्रभाकर' ग्रंथ (छंद संख्या 1108) छप चुका है।

47. इनका 'केहर प्रकाश' ग्रंथ छप चुका है। इनके अन्य ग्रंथ हैं—स्वरूप यश प्रकाश, भानुयश प्रकाश, सज्जन यश प्रकाश, फतह यश प्रकाश, सज्जन चित्र चन्द्रिका, कविराव बख्तावर की वंश-परम्परा में कविराव मोहनसिंह भी अच्छे कवि हो चुके हैं, जिनके ये कुछ ग्रंथ हैं—प्रताप यशचन्द्रोदय कुंभा कीर्तिप्रकाश जैमल पच्चीसी, वणिक बहत्तरी, मोहन सतसई, मृगया बावनी, कुण्डलिया शतक, नीति शतक आदि।

□

लोक-गीतों में बेटी

चन्द्रदान चारण

मातृसत्ता युग में नारी का जितना सम्मान और प्रभाव था उतना पितृ-सत्ता युग में नहीं रहा। यही कारण है कि आगे चलकर समाज में यह धारणा बद्ध-मूल हो गयी कि बेटी का जन्म उल्लास का अवसर नहीं। वस्तु स्थिति यह है कि शादी के बाद बेटी पराये घर चली जाती है इसलिए उसका जन्म चिन्ता का कारण बन जाता है। राजस्थान में कई स्थानों पर शोक प्रकट करने के लिए छाजला बजाया जाता है। राजस्थानी लोक साहित्य में इस भाव को बड़े यथार्थ रूप में अंकित किया गया है। यदि बेटी होने का समाचार मिले तो पुरुष का क्रोध फूट पड़ता है। वह अपनी पत्नी से कहलाता है—तूने मुझे साथियों के बीच लज्जित कर दिया है। मैं अब तेरे लिए टूटी खाट बिछाऊंगा और टाट के पर्दे डलवाऊंगा। अब तुझे अलसी के तेल का ही सीरा (हलुआ) मिलेगा। इतना ही नहीं बेटी के जन्म पर दाई को भी पूरा नेग या बधाई नहीं मिलती।

सामन्ती युग में राजस्थान में सती-प्रथा प्रचलित थी, अतः बेटी को भी झूले में ही लोरियों के साथ यह सीख दी जाती थी कि वह मृत्यु से न डरे। माता बेटी से कहती है :—जब तुम्हारा पति युद्ध में वीर-गति प्राप्त कर ले तो तू पीछे मत रहना। सती होकर तुम भी अपना नाम देवियों में सम्मिलित कराना। मेरी यही कामना है कि सती रूप में तुम्हारी पूजा हो :—

पिव रै संग में बलनै बेटी सतियां नाम धराइये तूं
देवलिये कुंकुं रा पगल्या बेटी बल पुजवाइये तूं

यह बात विशेप रूप से उल्लेखनीय है कि राजस्थानी लोक गीतों में बेटी के जन्म के समय के बहुत कम गीत मिलते हैं। पर उसके बाद तो बेटी के जीवन, उसकी उमंगों और अभिलाषाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। बेटी कुछ बड़ी हुई। वह बाहर खेलने जाती है और वापस विलम्ब से आने

पर पिता से फटकार सुननी पड़ती है। इस पर पिता को समझाया जाता है— बाई को गाली मत दो। यह तो चिड़िया है। आज या कल विवाह होते ही चली जायेगी। बेटी के प्रति स्नेह की व्यञ्जना करते हुए उसे चिड़कोली, कोयल आदि कहा गया है। इनके द्वारा मानों यह संकेत किया गया है कि पिता के घर उसका निवास थोड़े ही काल का है :—

चाँद चढ्यो गिगनार किरत्यां ढल रइयाँ ढल रइयाँ,
उठ बाई भँवरी घरे पधार, माऊजी मारै लाजी मारैला।
बाबोजी देला गाल, वीरोजी वरजै लाजी वरजै ला,

म्हारी बाई नै मत दयो गाल, म्हारी बाई चिड़कोली जी चिड़कोली
आज उड़ै परं भात तड़क उड़ ज्यासी जी उड़ ज्यासी।

बेटी अवसर आने पर अपने पिता से यह कहने में संकोच नहीं करती कि उसे कैसा पति चाहिए। चाहे उसकी ससुराल कितनी ही दूर हो पर वर उसके योग्य होना चाहिए :—

बागां बैठी बनड़ी पान चावै फूल सूंघै
करै ये बाबाजी सूं बीणती,
बाबाजी देस देता परदेस दीज्यो
म्हारी जोरी रो वर हेरज्यो।

इसमें बेटी अपने भावी पति के आवश्यक गुणों का ही उल्लेख नहीं करती, वह उन अवगुणों का भी वर्णन करती है जो उसके वर में नहीं होने चाहिए। इतना ही नहीं वह उस स्थान का भी नाम बता देती है जो उसे पसन्द नहीं। उसे बीकानेर न ब्याहा जाय क्योंकि वहाँ पानी गहरा है और दूर से लाना पड़ता है :—

बीकाणे मत देय, बीकाणे से पानी बोली दूर

इसी प्रकार की कठिनाई 'ढोला-मारु रा दूहा' में प्रकट की गयी है। मालवणी मारवाड़ की निन्दा करती हुई कहती है :—बाबा ! मुझे मारवाड़ में मत ब्याहना, चाहे मैं कुंवारी रह जाऊं। अगर आपने मेरा विवाह वहाँ कर दिया तो दिन भर हाथ में कटोरा और सिर पर घड़ा रहेगा एवं सारा जीवन पानी ढोते-ढोते बीतेगा :—

"बाबा म देइस मारूंवां, वर कुंआरी रहेसि।
हाथ कचोलड सिर घड़ो, सींचंतीय मरेसि ॥"

इसी प्रकार जो जाति पसन्द नहीं होती उसका भी उल्लेख कर दिया जाता है :—

म्हारी घूमर है नखरालीए माय घूमर रमवा म्हे जास्यां
म्हांनै देवड़ा रै घरै मत दीज्यो ए माय, घूमर रमवा म्हे जास्यां

बेटी का विवाह हो रहा है। पिता के लिए कन्यादान का कार्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह एक ओर महान, धार्मिक अनुष्ठान है यहाँ साथ ही हृदय को आन्दोलित करने वाला है :—

थरहर धरती धूजै, हुई रे धरम री वेला औ राज
सुरिमल रो धरम बाई रो बाबोजी लेसी

जिस बेटी को इतने प्रेम से पाला-पोसा था, आज वह अन्य की हो रही है। फेरे लेते समय अन्त में कह दिया जाता है कि अब बाई पाराई हो गयी :—

हमैं बाई रा वीराजी सेवरा भल देवैं
लाडड़ल सूं पैली मेरी लाडड़ली नै देसी
हमैं तो बाई नै पैलो फेरो
हमैं बाई नै दूजो फेरो
हमैं बाई वीरेजी री बैनड़
हमैं बाई नै तीजो फेरो
हमैं तो बाई हुई रे पराई

और अवसरों पर दान देने वाला गर्वोन्नत रहता है तथा दान लेने वाला विनम्र बन कर उसे ग्रहण करता है लेकिन यहाँ स्थिति बिलकुल विपरीत है। बेटी का बाप कन्या-दान करता है और हार जाता है। वर का पिता आज जीत गया है :—

दोनूं समधी बैठ्या तख्त बिछाय
कोई कुण हारयो कुण जीत्योजी।
हारयो हारयो राजकुंवरी रो बाप, धण गोरी की पाछै म्हे।

बेटी आज परायी हो गयी। माता-पिता का गहरा प्रेम उसे रोक नहीं सकता। आज कोयलड़ी अन्यत्र जा रही है। राजस्थानी लोक गीतों में बेटी की विदाई का वर्णन बहुत ही मार्मिक हुआ है :—

म्हें थानैं पूछां म्हारी कंवर बाई ओ
इतरा बाबोजी रा लाड, छोड़' र बाई सिध चाल्या ओ।

बेटी का पहली बार बिछोह माता-पिता के हृदय में अपार वेदना

उत्पन्न करता है। आँसुओं का समुद्र उमड़ पड़ता है। गला अवरुद्ध हो जाता है। मुँह से शब्द नहीं निकल पाते। इस कारुणिक दृश्य को कालिदास ने भी शकुन्तला की बिदाई के समय अंकित किया है। महर्षि कण्व सोचते हैं कि मेरे जैसे तपस्वी को भी शकुन्तला की बिदाई के समय इतना मोह हो रहा है तो वेचारे गृहस्थ अपनी बेटी का प्रथम वियोग कैसे सहन करते होंगे। राजस्थानी लोक जीवन में भी यही झाँकी देखने को मिलती है। सारा परिवार कन्या के विछोह में उदास है एवं आँसू बहा रहा है :—

वनखण्ड री ए कोयल, वनखण्ड छोड़ कठै चाली
थारी आले दिवाले गुडिया धरी
थारा बाबोसा फिरै छै उदास
माऊजी थारी बिलख रही

बेटी जिस घर में खेली, बड़ी हुई, मां-बाप का स्नेह पाया, उसे सहज ही नहीं छोड़ा जा सकता। जब परदेसी 'सुवटा' आकर उसे टोली में से टाल कर ले चलता है तो उसका हृदय स्मृतियों से उमड़ पड़ता है। बिदा होती हुइ बेटी को 'ओलूं' आती है और वह निवेदन करती है—हे पति, एक बार घोड़ा वापस मोड़ो, मुझे पिताजी का स्नेह स्मरण हो आया है, माताजी की याद आ गयी है :—

सुमरा सायब जी एक र तो घुड़लो पाछो घेर
ओलयूंड़ी तो आवै म्हांनै बाबोजी रै हेत री
सुमरा सायब जी एक र तो घुड़लो पाछो घेर
ओलयूंड़ी तो आवै म्हांनै रातादेई माँय री

बेटी अनमेल विवाह को पसन्द नहीं करती। पति यदि उम्र में अधिक छोटा अथवा अधिक बड़ा हो तो दोनों ही स्थिति उसे सहन नहीं। किसी बूढे के साथ विवाह हो जाने पर वह गहरा दुःख प्रकट करती है और जहर खाकर मरने तक तैयार हो जाती है :—

ज्यानी म्हारा मरूँ जहर विष खाय
बूढै नै बेटी क्यू देई ए मेरी माय।

इसी प्रकार किसी किसान को ब्याह देने पर बेटी अपने जीवन की कठिनाइयों से ऊब कर शिकायत करती है कि उसका विवाह 'हाली' के साथ क्यों किया गया :—

काली तो पीली इक मा मेरी बादली, बरसण लाग्यो मेह,
म्हारै बाबाजी नै कहियो ए, हाली नै बेटी क्यूं दई।

बेटी को यदि अपने विवाह में खूब दहेज मिलता है तो वह बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करती है। इसका कारण भी है। वह जितना ही अधिक दहेज लेकर जायेगी, ससुराल में उसका उतना ही अधिक आदर होगा। अपने पिता व बाबा द्वारा दिये गये दायजे को देखकर बेटी खुश होकर कहती है :—

बाबो तो दीनो जी म्हांनै दायजो, भर भर गाड़ी हंकवाय,
बाबल तो दीनो जी म्हांनै दायजो, गाडा रै दीना म्हांनै
वैलिया गाडा दिया ए घड़ाय।

वास्तव में ससुराल में आकर ही बेटी को पता चलता है कि उसके पूर्व जीवन की स्वतन्त्रता अब नहीं रही है। अब उसे विभिन्न सामाजिक प्रथाओं के बन्धन स्वीकार करने पड़ रहे हैं। वह सोचती है :— मेरा पीहर अच्छा है जहाँ मैं दौड़-दौड़ खेलती रही। यह ससुराल अच्छी नहीं। यहाँ तो घूघट में दिनों-दिन दुर्बल होती जा रही हूँ :—

आछो म्हारो पीयरियो, दौड़ा दे दे खेलूंजी,
खोटो म्हारो सासरियो, घूंघटिया में छीजूंजी।

बेटी के विवाह के बाद तीज का त्यौहार आया। ससुराल में यह उसकी पहली तीज है। उसकी पुरानी स्मृतियाँ उमड़ पड़ती हैं। वह माँ को सन्देश कहलवाती है—माँ मेरी सारी सहेलियाँ आज झूलने व खेलने जा रही हैं पर मुझे ससुराल भेजा गया है। यहाँ तीज का उल्लास तो दूर रहा, ससुराल के काम का अनन्त बोझा है :—

आयी आयी मां पैले सावण री तीज
तीज्यां नै मेली माँ सास रै
और सहेल्यां मां झूलण जाय मां खेलण जाय
मनै मणरो मां पीसणों
मनै मणरो मां पोसणों

और कोई उपाय न देख बेटी अब अपने पिता के यहाँ भेजने के लिए अपनी सास से ही अनुरोध करती है :—

आयो री सासड़ सांवण मास
सांवण मास म्हांनै खिनादयो री सासड़ बाप कै

भाई जब उसे लेने आता है और ससुराल वाले उसे नहीं भेजते तो अपनी कष्ट कथा सुनाते हुए वह कहती है—मेरा यह दुःख दर्द और किसी को मत बताना। पिताजी से जरूर कहना। वे मेरे दुःख की बात सुनते ही ऊँट पर

पलाण कस कर आयगे और मेरा कष्ट मिटाने का प्रयत्न करेंगे :—

वापजी सुणतां, बीरा भल कह्यो
मांडै रे करलै पलांण, मेहा झड़ मांडियो

अपनी सन्तान के विवाह पर बेटी पीहर वालों को मायेरा या भात का निमन्त्रण भेजती है। उनके आने की प्रतीक्षा में लीन बेटी कौवे के साथ संदेश भेजती है :—

उड वायउडा म्हारा, पीयर जी, नूंत पियरे रा भातवी जै
भल न्यूंती रे म्हारो जलवलजामी बाप, रातादेई म्हारी माय नै

बेटी जब कभी तीर्थ-यात्रा पर जाती है तो अपने पुण्य में भी माता-पिता को भागीरदार बनाना नहीं भूलती। गंगा स्नान करते समय पिता को स्मरण रखा जाता है और पवित्र जल में एक डुबकी (अभोलो) उनके नाम की भी लगायी जाती है :—

रामा एक अभोलो मेरै बाप को,
रामा ज्यां सैं म्हे पैदा होया।

आज युग बदल गया। आदमी चाँद पर पहुँच गया। कम्प्यूटरों ने आदमी के जीवन और कार्य-कलापों में काया पलट कर दी। पर राजस्थान के जीवन में आज भी बेटी के जीवन से सम्बन्धित कई ऐसे कारुणिक-प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं, जिनका उल्लेख राजस्थानी लोक गीतों में किया गया है। शिक्षा-प्रसार के साथ जीवन का ऊपरी ढाँचा—रहन-सहन, खान-पान—तो बदला पर जीवन की मूल वृत्तियों में कोई बदलाव नहीं आया है। राजस्थानी लोक-गीतों में 'बेटी' की करुण गाथा आज भी उसी मार्मिकता के साथ गुंजित है।

□

तबला

कृष्णा बायती

आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व दिल्ली में उत्तम पखावजी भगवानदास व सुधार खां के मध्य पखावज वादन प्रतियोगिता हुई। इस प्रतियोगिता में सुधार खां हार गये और चिढ़कर पखावज के दो टुकड़े कर दिये। कहा जाता है कि सुधार खां ने इन्हीं दो टुकड़ों पर खूब अभ्यास किया और भगवानदास को सुनाया जिसे भगवानदास ने खूब सराहा और कालान्तर में पखावज के यही दो टुकड़े 'तबला' नाम से एक नये वाद्य के रूप में प्रचलित हुए।

कुछ विद्वानों का मत है—तबला फारसी का शब्द है। ११वीं शताब्दी के बाद मुसलमान जब स्थायी रूप से भारत में रहने लगे और जैसे-जैसे ख्याल गायन का प्रचार बढ़ता गया, एक ऐसे वाद्य की आवश्यकता प्रतीत होने लगी जो ख्याल गायन के साथ संगति (साथ) कर सके। तबले से पूर्व पखावज का प्रचार था जो गम्भीर प्रकृति का वाद्य था। इसी आवश्यकता की पूर्ति अर्थात् 'तबला' का आविष्कार श्री अमीर खुसरो जी ने किया।

कलिका पुराण के विवरण से भी यह स्पष्ट है कि भारत में तबले का मूर्त-रूप प्रचार में आ चुका था, परन्तु यह सम्भव है कि अमीर खुसरो ने 'संबल' नामक वाद्य को ही लकड़ी के कठघरे में से बाहर निकाल दिया हो और उसे डंडियों के स्थान पर अंगुलियों से बजाना प्रारम्भ कर दिया हो। 'संबल' में जिस प्रकार शिव और शक्ति दो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार तबले में भी उत्पन्न होती हैं।

तबले के दो भाग होते हैं—बांये हाथ से बजाये जाने वाला बांया, डग्गा ओर भांड़िया कहलाता है और दाहिने हाथ से बजाये जाने वाला तबला या मांदी कहलाता है। कुछ विद्वान इसे 'नरघा' कहते हैं और काठियावाड़ में इसे 'घुक्कड़' कहते हैं।

मांदी या तबला लकड़ी का बना होता है। इसके लिए सूखा काठ प्रयोग

में लाया जाता है। इसके लिए शीशम, आम, बबूल, खैर आदि की लकड़ी प्रयोग करते हैं परन्तु सर्वोत्तम शीशम की लकड़ी ही होती है। इसके मुख पर चमड़ा मढ़ा रहता है जिसे पुड़ी कहते हैं। पुड़ी के अन्तर्गत चोट, लव, स्याही रहती है व पुड़ी की सुरक्षा हेतु एक गजरा भी लगा रहता है। पुड़ी को यथा-स्थान रखने के लिए द्वालों का प्रयोग किया जाता है। इसमें पखावज की ही भांति आठ गट्टे लगे रहते हैं।

बांया—मिट्टी, पीतल, तांबा अथवा सिल्वर आदि का बनाया जाता है। इसका मुंह तबले की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है और मुंह पर पुड़ी मढ़ी रहती है। इसकी लम्बाई तबले की अपेक्षा कम होती है परन्तु इसका पेट थोड़ा चौड़ा होता है।

तबले का मुख्य कार्य साथ करना है। जहां गायन में शास्त्रीय, अर्धशास्त्रीय या लोकगीत हों सभी के साथ समान गति से साथ करता है वहीं वाद्यों में भी—सितार, सरोद, वीणा अथवा गिटार आदि के साथ भी सफलतापूर्वक संगति करता है। नृत्य का तो इसके बिना एक कदम भी चलना सम्भव नहीं है। कत्थक नृत्यकार जिन बोलों, परतों, मुखड़ों आदि को अपनी घुंघरुओं की ध्वनि से प्रदर्शित करता है ठीक उसी समय उन्हीं बोलों, परतों, मुखड़ों आदि को तबला वादक अपने वादन से तबले पर सुना देता है। यही नहीं विभिन्न देवी देवताओं की स्तुतियां भी तबले पर बजा ली जाती हैं जैसे—

गणपति पूज्यो गणपति पूज्यो पानफू लनें
घिटघिट घित्ता घिटघिट घित्ता ताऽनता ऽनता
गणपति पूज्यो फिर पूज्यो फिर पूज्यो फिर पूज्यो
घिटघिट घित्ता घिट घित्ता घिट घित्ता घिट घित्ता

यद्यपि तबले का जन्म संगति के लिए ही हुआ था परन्तु अब इसने अपने कलेवर में इतनी वृद्धि कर ली है कि इसको सोलो (एकाकी) में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आज स्कूल शिक्षा से लेकर कालेज व विश्वविद्यालय शिक्षा में भी इसको पृथक विषय मान लिया गया है। तबले पर तबले की तालों जैसे तीनताल, झपताल, कहरवा, दादरा का जहां अच्छी प्रकार से वादन कर लिया जाता है ठीक उसी प्रकार पखावज की तालों का भी अच्छी प्रकार से वादन कर लिया जाता है। 'तीनताल' में एक टुकड़ा—

धात्तिऽन्न तित् धाती धातिरकिटतक तातिरकिटतक
तिरकिटतकता तिरकिटधाती धाऽधाती धाऽधाती धाऽ
ऽधाती धाऽधाती धाऽधातीधाऽ ऽधाती धाऽधाती धाऽधाती

रेडियो, संगीत गोष्ठियों के माध्यम से कंठे महाराज, किशन महाराज,

लालजी श्रीवास्तव, गिरीशचन्दजी श्रीवास्तव, अनोखेलालजी मिश्रा जैसे तवला वादकों ने तबले का प्रचार जहां जनसाधारण में किया है वहीं गुदई महाराज, श्री विश्वनाथजी मिश्रा जैसे तवला वादकों ने विदेशों में प्रचार किया है। तबले पर अंगुलियों के थिरकने से स्व० अहमद जान का नाम थिरकू फिर अहमद जान थिरकवा पड़ा।

तबला जनसाधारण में इतना प्रचलित है इसका एक मात्र कारण इसका कम मूल्य है। इसकी साधारण जोड़ी ४५ से ५० रु० तक व अच्छी जोड़ी २०० से २५० रु० तक आसानी से उपलब्ध हो जाती है। यही नहीं लड़कियां भी लड़को के समान ही इसका सुगमतापूर्वक वादन कर लेती हैं। आज गायन, वादन और नृत्य तबले के अभाव में गन्ध रहित पुष्प के समान है।

□

कला और योग

रमेश गर्ग

मेरे सामने मकान हो या सड़क, पहनने के कपड़े हों या खाने की वस्तु, रिश्तेदार हो या कोई भी प्राणी भौतिक कोई भी वस्तु या जीवन की सांस— सबके साथ मेरा यह प्रश्न उठता रहा—वे क्या हैं, मेरे से क्या सम्बन्ध रखते हैं और जीवन में इनकी क्या आवश्यकता है ?

सुख, शान्ति, ज्ञान, प्रकाश के साधन क्या हैं—कौनसा रंग, कौनसी रेखाएँ, कौनसा आकार, कौनसा कार्य और कौनसा विचार मूर्त या अमूर्त रूप में चाहे जो हो पर वे क्या अस्तित्व रखते हैं -- उनके द्वारा आत्म सन्तोष और उससे भी अधिक निर्लिप्तता कैसे प्राप्त की जा सकती है ---

इस प्रकार मेरे लिये चित्रकला जीवन यात्रा को तय करने का माध्यम और उसके द्वारा निर्वाण की स्थिति तक पहुँचने की आधार भूत बनती रही है।

बहुत शीघ्र नहीं तो कुछ समय लेकर मैं अधिकांश भौतिक वस्तुओं से, अधिकांश क्रिया-कलापों से, यहाँ तक कि भाव बोध से, निर्लिप्तता, पैदा करता रहा हूँ—पर इन्हें वाह्य रूप से कभी प्रगट नहीं होने दिया क्योंकि मुझे एक वाह्य नहीं आन्तरिक सफलता की इच्छा रही है।

मुझे इस बात की आशंका कभी नहीं रही कि कोई क्या कहेगा, मेरा क्या होगा, क्या बनेगा, या बिगड़ेगा, दुनिया वाले मान देंगे या अपमान—मेरा यह दृष्टिकोण दूसरे लोगों में औचित्य पा रुकेगा या विरोध पर मेरी ये इच्छाएँ सभी लिप्तता की परिचायक कभी न हों—क्योंकि जीवन का कोई आशय है या मंजिल है तो वह केवल निर्लिप्तता प्राप्त करने का ही है जहाँ देखते-देखते निर्वाण के क्षण प्राप्त हो सकें।

निर्लिप्तता की यह दशा मेरे साथ हमेशा जुड़ी रहती है—चाहे किसी भी प्रकार का कर्म क्यों न हो चाहे वह चित्रकला हो, या विचार बोध—पर वे मेरे ध्येय के साथ मेल नहीं खाते तो जहाँ तक मेरा बस चलता है मैं उनसे पृथक् रहते हुये मौन बैठे रहना अधिक पसन्द करता हूँ।

कर्म से कहीं बन्धन जोड़े भी हैं तो वह कोई नई बात जानने के लिये ही। एक ऐसा स्पष्ट और खुला 'ज्ञान' जो प्रकाश जुटाने में सहायक सिद्ध हो सके, अज्ञान की बेड़ियों को तोड़ते में मैंने जीवननैया को झंझावतों से बचाकर

निकालने के लिए निरन्तर प्रयास किया है।

मेरे जीवन की यह दशा मेरे लिये इतनी अधिक सुखदायी है कि मैं सोचता हूँ, इसे केवल अनुभव ही किया जा सकता हैं—कहा या सुना नहीं जा सकता। मेरे जीवन में सुखों का साम्राज्य है, जिसे मैं चाहे कह कर न दर्शाऊँ पर आत्म-सन्तोष मैंने खूब भोगा है।

मेरे लिए चित्रकला या चिन्तन क्रिया, उन आकार रंग, रेखाओं को खोजने में सहायक सिद्ध होती रही हैं, जिनसे मैं अधिक से अधिक आत्म सन्तोष के राज को जान सकूं।

मैं नहीं कह सकता कि मेरी कला, मेरे विचार केवल स्वांत: सुखाय, दूसरों के लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं या नहीं—तो स्पष्ट है, समाज में यदि आत्म बोध, ज्ञान, सत्य, सौन्दर्य के लिए स्थान है तो वह इस कला का आनन्द उठा सकती है अन्यथा नहीं। क्योंकि कला की अनुभूति मात्र आत्मानुभूति ही हो सकती है, उसे शब्द रूप या रंग रूप, रेखाएँ देना तो मात्र प्रतीकात्मक है।

क्योंकि जब हमें ऐसा अहसास होने लग जायेगा कि अब कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे 'दूसरा कहा जा सकता है, तभी हम वस्तु स्थिति को ठीक समझ पायेंगे या फिर कोई चीज ऐसी नहीं रह जायेगी, जिसे समझने की भी आवश्यता पड़े—क्योंकि तब वह एक ऐसा तत्व होगा, जिसमें हम अपने से भिन्न किसी और का आभास ही नहीं करेंगे।

पर 'तत्व' ज्ञान की प्राप्ति के लिये हम बहुत उतावले हैं, कोई इसे ईश्वर के रूप में, कोई किताब और कोई गुरु या शिक्षणालय में खोजने का प्रयास करता है—पर तत्व ज्ञान का मार्ग सीधा, निरन्तर आगे बढ़ने वाला एक ऐसे खोजी का पथ है, जो आकारित करके कभी उसे छूने का प्रयास नहीं करता।

जिसे न हम शब्द रूप में वर्णित कर सकते हैं न किसी आकार में—क्यों कि तब शब्द या शब्दों का आडम्बर रह जायेगा—'तत्व लुप्त' हो जायेगा।

इसलिये हम यदि उतावले ही हैं तो किसी अन्य चीज के लिए रहें—कला साधना के लिये नहीं या 'तत्व' की प्राप्ति के लिये नहीं—पर हम एक क्षण के लिये भी इस लिप्तता से मुक्स नहीं हो पाते।

सच तो यह है कि सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व जो हमारे सामने है, एक पूर्ण इकाई है, जिसे अन्यत्र खोजने के लिये हमारा व्यर्थ का आग्रह चलता रहता है—जो जब तब प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि वस्तु की निर्लिप्तता को हम नहीं अपना लेते, अत: कला मेरे लिये एक योग का साधन है।

□

कविवर कन्हैयालाल सेठिया से एक भेंट वार्ता

गोपाल 'घायल'

राजस्थान के प्रकृति-चित्रण करने वाले कवियों पर सामान्यत: एक आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने प्रकृति-चित्रण के पीछे उस पूर्ण सत्य का साक्षात्कार नहीं किया। क्या आपकी प्रकृति परक रचनाओं पर भी यह लागू होता है ?

वैसे कोई जरूरी नहीं कि प्रत्येक कवि प्रकृति चित्रण करते समय उस दिव्य शक्ति को अनुभूत करे ही, और मैंने 'धर कूंचा घर मंजला' में तो अनेकत्र पूर्ण सत्य के साथ साक्षात्कार किया है।

राजस्थान के गीतकारों पर क्षेत्रीयता, आंचलिकता का आरोप कहाँ तक सही है क्योंकि आपकी 'धरती धोरां री' जैसे सुप्रसिद्ध गीत पर भी अंगूली उठाई जाती है।

> धरती—धोरां री' राजस्थान की
> धरती पर ही नहीं वरन् विदेशों में
> भी चर्चित है, जब मेरे आत्मज जापान के
> एक होटल कूवा में खाना-खाने गये तो
> वहाँ "धरती—धोरांरी" बज रहा था। अब
> आप अनुमान लगा सकते हैं कि इसमें कितनी
> क्षेत्रीयता है।

"मींझर" से शुरू की गई आपकी पैदल यात्रा "धर कूंचा धर मंजला' तक आते-आते विशिष्ट घोड़ों पर सवार हो गई है—इसके पीछे क्या आपका कोई विशेष "विजन" है ?

बस इसका कारण यही है कि मेरा चिंतन गूढ़ से गूढ़तम होता गया है।

आपकी प्रतिभा प्रबन्ध, या खण्ड काव्य लिखने की ओर प्रवृत्त क्यों नहीं हुई—?

प्रबन्ध या खण्ड काव्य लिखने के लिए सचेत रहना पड़ता है और एक

सचेत रहकर किये गये कार्यों में वह दिव्यता नहीं रहती, फिर क्षण की अनुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति जैसी गीत में व्यक्त की जा सकती है। वैसी अन्य में नहीं।

आपकी कविताओं का शिल्प नई कविता के प्रतिमानों को कहाँ तक छूता है—

इसका उत्तर मेरी "कविता" शीर्षक नामक कविता में है।

आपकी "लीलटांस' व धर कूँचा धर मंजला में शिल्प की दृष्टि से कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं— भले ही कथ्य की सूक्ष्मता घर कूँचा घर मंजला में अधिक हो।

"मैंने लीलटांस इस भावना से लिखी कि इसके माध्यम से मैं विश्व साहित्य को एक कृति दे सकूँ।"

आपकी हिन्दी की क्रुत्तियों व राजस्थानी क्रुत्तियों में विषय बहुत कुछ एकसा है।

विषय की दृष्टि से चाहे बहुत ज्यादा अन्तर न हो पर परिवेश की दृष्टि से काफी अन्तर है, हिन्दी की क्रुत्तियों में दर्शन संस्कृति सब कुछ व्यापक परि-वेश में चित्रित है व राजस्थानी कृतियों में यह राजस्थानी संस्कृति के परिवेश तक।

आपकी राष्ट्रीयता राजस्थानी रचनाओं के बजाय हिन्दी की रचनाओं में अधिक दीप्त व प्रखर है। "अग्नि वीणा" व "आज हिमालय बोला, तो पूरी-की-पूरी राष्ट्रीय कृतियाँ हैं—

"आज हिमालय बोला' " अग्नि वीणा" जैसी कृत्तियाँ परिवेश जन्य हैं।

☐

सम्पर्क-सूत्र

वीणा गुप्ता, अध्यापिका, श्रीराम विद्यालय, उद्योगपुरी, कोटा

अब्दुल मलिक खान, अध्यापक, प्रेस रोड, सिंधी कॉलोनी, भवानी मंडी (झालावाड़)

भगवतीलाल व्यास, व्याख्याता, लोकमान्य तिलक टीचर्स कॉलेज, डबोक (उदयपुर)

भगवती प्रसाद गौतम, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, भवानी मंडी (झालावाड़)

कुंदन सिंह सजल, अध्यापक, उदय निवास, रायपुर-पाटन (सीकर)

मुख्तार टोंकी, प्रधा०, रा० उ० प्रा० वि०, घांस (टोंक)

श्याम मनोहर व्यास, प्रधा०, रा० उ० मा० वि०, त्रिछीवाड़ा (डूंगरपुर)

जगदीश प्रसाद सैनी, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, रींगस (सीकर)

माल चन्द्र 'कमल', व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, पावटा (जयपुर)

गोपाल प्रसाद मुद्‌गल, प्रधा०, रा० उ० मा० वि०, सेवर (भरतपुर)

निशान्त, अध्यापक, द्वारा-डी० राज पेंटर, पीलीबंगा (गंगानगर)

राम निरंजन शर्मा 'ठिमाऊ', साबू हायर सैकेण्डरी स्कूल, पिलानी (झुंझुनूं)

बसंतीलाल सुराना, महिला आश्रम उ० मा० वि०, भीलवाड़ा

श्रीमती चमेली मिश्र, व्याख्याता, सेठ मु० बा० बालिका उ० मा० वि०, पाली

श्रीमती हरिकान्ता दशोरा, प्रधा०, रा० बालिका उ० प्रा० वि०, स्टेशन, (चित्तौड़गढ़)

जसवन्तमल मोहनोत, अध्यापक, रा० उ० मा० वि०, देवगढ़ (उदयपुर)

पी० राज दवे 'निराश', अध्यापक, रा० उ० मा० वि०, सिणधरी (बाड़मेर)

प्रेम 'खकरधज' अध्यापक, रा० उ० मा० वि०, सिणधरी (बाड़मेर)

श्रीकृष्ण बिश्नोई, व्याख्याता, श्री जैन उ० मा० वि०, गंगाशहर की घाटी, बीकानेर

श्रीमती सत्या भार्गव, अध्यापिका, सी-2 श्री रामनगर, कोटा

दयावती शर्मा, प्रधा०, श्री रामदेव उ० प्रा० बालिका वि०, संगरिया मंडी (गंगानगर)

पुष्पलता कश्यप, श्री राम सदन, पोलो-II, प्लाट नं० 40, फायर ब्रिगेड के सामने, जोधपुर

अरनी रॉबर्ट्स, प्रधा०, रा० मा० वि०, सोप, वाया शहर, (सवाई माधोपुर)

सुश्री दुर्गा भण्डारी, अध्यापिका, रा० बालिका, मा० वि०, भूपालपुरा, उदयपुर

रमेश भारद्वाज, 4112 चौकड़ी वालों का मोहल्ला, नसीराबाद (अजमेर)

जयसिंह चौहान 'जोहरी', अध्यापक, जौहरी सदन, कानोड़ (उदयपुर)

ब्रजमोहन द्विवेदी, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, परबतसर (नागौर)

श्रीमती कमला अग्रवाल, वरिष्ठ उपजिला शिक्षाधिकारी (छात्राएं), भीलवाड़ा

चन्द्रदान चारण, प्रधा०, भारतीय विद्यामंदिर रात्रि उ० मा० वि०, बीकानेर

कृष्णा बायती, प्रधा०, इन्दिरा गांधी बालिका निकेतन मा० वि०, अरड़ावता (झूंझुनूं)

रमेश गर्ग, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़)

गोपाल घायल, अध्यापक, डूमोली कलां पो०-डूमोली खुर्द वाया सिंघाना (झुंझनूं)

शिक्षक दिवस प्रकाशन

सम्पूर्ण सूची

1967 :

1. प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3. परिक्षेप (विविधा), 4. सालिक़ ए गोहर (उर्दू), 5. दार की दावत (उर्दू)

1968 :

6. कैसे भूलूं (संस्मरण), 7. सन्निवेश (विविधा), 8. दामाने बागबां (उर्दू)

1969 :

9. प्रस्तुति-2 (कविता), 10. बिम्ब-बिम्ब चाँदनी (गीत). 11. प्रस्थिति-2 (कहानी), 12. अमर चूनड़ी (राजस्थानी कहानी), 13. यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14. गांधी दर्शन और शिक्षा (शिक्षा दर्शन), 15. सन्निवेश-2 (विविधा)

1970 :

16. सूखा गाँव (गीत), 17. खिड़की (कहानी), 18. कैसे भूलूं-दो (संस्मरण), 19. सन्निवेश-3 (विविधा)

1971 :

20. प्रस्तुति-3 (कविता) 21. प्रस्थिति-3 (कहानी), 22. सन्निवेश-4 (विविधा)

1972 :

23. प्रस्तुति-4 (कविता), 24. प्रस्थिति-4 (कहानी), 25. सन्निवेश-5 (विविधा), 26. माळा (राजस्थानी विविधा)

1973 :

27. धूप के पंखेरू (कविता), 28. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी), 29. रेजगारी का रोजगार (एकांकी), 30. अस्तित्व की खोज (विविधा), 31. जूना बेली : नूवां बेली (राजस्थानी विविधा)

1974 :

32. रोशनी बाँट दो (कविता) सं० रामदेव आचार्य, 33. अपने आस-पास (कहानी) सं० मणि मधुकर, 34. रङ्ग-रङ्ग बहुरङ्ग (एकांकी) सं० डॉ० राजानन्द, 35. आँधी अर आस्था व भगवान महावीर, (दो राजस्थानी उपन्यास) ले० अन्नाराम सुदामा सं० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', 36. बारहखड़ी (राजस्थानी विविधा) सं० वेद व्यास

1975 :

37. अपने से बाहर अपने में (कविता) सं० मंगल सक्सेना, 38. एक और अंतरिक्ष (कहानी) सं० डॉ० नवलकिशोर, 39. संभाल (राज० कहानी) सं० विजयदान देथा, 40. स्वर्ग भ्रष्ट (उपन्यास), ले० भगवती प्रसाद व्यास, सं० डॉ० रामदरश मिश्र, 4'. विविधा सं० डॉ० राजेन्द्र शर्मा

1976 :

42. इस बार (कविता) सं० नंद चतुर्वेदी, 43. संकल्प स्वरों के (कविता) सं० हरीश भादानी, 44. बरगद की छाया (कहानी) स० डॉ विश्वम्भर-नाथ उपाध्याय, 45. चेहरों के बीच (कहानी व नाटक) सं० योगेन्द्र किसलय, 46. माध्यम (विविधा) सं० विश्वनाथ सचदेव

1977 :

47. सृजन के आयाम (निबन्ध) सं० डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, 48. क्यों (कहानी व लघु उपन्यास) सं० श्रवणकुमार, 49. चेते रा चितराम (राजस्थानी विविधा) सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी. 50. समय के संदर्भ (कविता) सं० जुगमन्दिर तायल, 51. रङ्ग-वितान (नाटक) सं० सुधा राजहंस

1978 :

52. अंधेरे के नाम संधि-पत्र नहीं (कहानी संकलन) सं० हिमांशु जोशी, 53. लखाण (राजस्थानी विविधा) सं० रावत सारस्वत 54. रचेगा संगीत (कविता संकलन)सं० नन्दकिशोर आचार्य, 55 दो गाँव (उपन्यास) ले० मुकारब खान आजाद, सं० डॉ० आदर्श सक्सेना 56. अभिव्यक्ति की तलाश (निबन्ध) सं० डॉ० रामगोपाल गोयल।

1979 :

57. एक कदम आगे (कहानी संकलन) सं० ममता कालिया, 58. लगभग जीवन (कविता संकलन) सं० लीलाधर जगूड़ी, 59. जीवन यात्रा का

कौलाज/नं० ? (हिन्दी विविधा) सं० डॉ० जगदीश जोशी, 60. कोरणी कलम री (राजस्थानी विविधा) सं० अन्नाराम सुदामा, 61. यह किताब बच्चों की (बाल साहित्य) सं० डॉ० हरिकृष्ण देवसरे।

1980

62. पानी की लकीर (कविता संकलन) सं० अमृता प्रीतम, 63. प्रयास (कहानी संकलन) सं० शिवानी, 64. मंजूषा (हिन्दी विविधा) सं० राकेश जैन, 65. अंतस रा आखर (राजस्थानी विविधा) सं० नृसिंह राजपुरोहित, 66. खिलते रहे गुलाब (बाल साहित्य) सं० जयप्रकाश भारती

1981

67. अंधेरों का हिसाब (कविता संकलन) सं० सवश्वर दयाल सक्सेना, 68. अपने से परे (कहानी संकलन) सं० मन्नू भण्डारी, 69. एक दुनिया बच्चों की (बाल साहित्य) सं० पुष्पा भारती, 70. सिरजण (राजस्थानी विविधा) सं० तेजसिंह जोधा, 71. वन्देमातरम् (हिन्दी विविधा) सं० विवेकी राय।

1982

72. धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे (कहानी संकलन) सं० मृणाल पाण्डे, 73. कौमी एकता की तलाश और अन्य रचनाएं (हिन्दी विविधा) सं० शिवरतन थानवी, 74. अपना-अपना आकाश (कविता संकलन) सं० जगदीश चतुर्वदी, 75. कूंपळ (राजस्थानी विविधा) सं० कल्याणसिंह शेखावत, 76. फूलों के ये रंग (बाल साहित्य) सं० लक्ष्मीचन्द्र गुप्त।

1983

77. भीतर-बाहर (कहानी संकलन) सं० मृदुला गर्ग, 78. रेती के रात-दिन (हिन्दी विविधा) सं० डॉ० प्रभाकर माचवे, 79. घायल मुट्ठी का दर्द (कविता संकलन) सं० डॉ० प्रकाश आतुर, 80. पांखुरियां माटी की (बाल साहित्य) सं० कन्हैयालाल नन्दन, 81. हिवड़ै रो उजास (राजस्थानी विविधा) सं० श्रीलाल नथमल जोशी।

राजस्थान के शिक्षक दिवस प्रकाशन

कुछ सम्मतियाँ

राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना के अन्तर्गत राज्य के सृजनशील शिक्षक साहित्यकारों की पाँच कृतियाँ 1980 वर्ष की सार्थक उपलब्धियाँ हैं।

—नवभारत टाइम्स

संग्रह में सभी कविताएँ, कविता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, यद्यपि कुछ कविताओं को पढ़कर कविता जैसा कुछ नहीं लगता किन्तु कलात्मक प्रयास को नकारा भी नहीं जा सकता।

—नवभारत टाइम्स

'प्रयास' कहानी लेखकों का उत्तम प्रयास है तथा शिवानी का सम्पादन-वक्तव्य नवलेखकों को गुरु-प्रेरणा का प्रयास है।

—नवभारत टाइम्स

'मंजूषा' में संकलित अधिकांश रचनाएँ एक ओर शिक्षकों की जीवन-पीड़ा तथा घुटन प्रस्तुत करती हैं तो दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों में उनकी आस्था, व्यवसाय के प्रति उनकी निष्ठा और शिक्षार्थियों के गिरते स्तर के प्रति चिन्ता तथा जागरूक उत्तरदायित्व उभारती है।

—नवभारत टाइम्स

संकलन में एक तरफ तो ऐसी रचनाएँ हैं जिनसे बच्चों को चरित्र निर्माण की प्रेरणा मिलेगी तो दूसरी तरफ ऐसी रचनाएँ भी हैं जिनसे उनका स्वस्थ मनोरंजन भी होगा।

—समाज कल्याण, दिल्ली

रचनाओं की विषय-वस्तु परंपरागत होते हुए भी बालकों के मानसिक विकास में सहायक हो सकती है। सभी रचनाओं में विशेषकर कहानियों में अनुभव की उष्णता विद्यमान है। संकलन निश्चय ही नन्हे-मुन्ने पाठकों के लिए उपयोगी है।

—समाज कल्याण, दिल्ली

संग्रह की अधिकतर कविताएँ जिन्दगी के फोटो हैं। इनमें किसी प्रकार के छद्म आदर्श की प्रस्तावना नहीं है।

—समाज कल्याण, दिल्ली

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ एक ऐसे आदमी की छटपटाहट को व्यक्त करने का प्रयास है जो निरन्तर अपरिचित एवं अमानवीय होते जा रहे परिवेश से पूर्णतया संपृक्त है। इस संपृक्ति के कारण ही राजस्थान के ये सृजनशील अध्यापक अपने आस-पास के परिचित संदर्भ को सृजनात्मक आयाम प्रदान कर पाए हैं।

—समाज कल्याण, दिल्ली

जिस तरह संग्रह की रचनाओं की संवेदना जिन्दगी से निष्पन्न है, उसी तरह इनकी संरचना भी। कविताओं की संरचना में कोई जटिलता नहीं है। लगभग सभी कविताओं में एक अनगढ़ता मौजूद है। यह अनगढ़ता ही इन कविताओं को विशिष्ट बनाती हैं।

—समाज कल्याण, दिल्ली

राजस्थान के शिक्षा-विभाग ने विगत कुछ वर्षों से शिक्षक दिवस पर राज्य के शिक्षक साहित्यकारों की रचनाएँ पुस्तक रूप में छापने की एक स्वस्थ परम्परा प्रारंभ की है। इस योजना से अनेक सृजनशील शिक्षक साहित्यकारों को साहित्य क्षेत्र में अपना स्थान बनाने के लिए भी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिला है।

—दैनिक हिन्दुस्तान

'पानी की लकीर' कुल मिलाकर यह एक अच्छा संकलन हैं और उसमें सम्मि-लित कविताएं कवियों की क्षमता की परिचायक हैं।

—दैनिक हिन्दुस्तान

'अंतस रा आखर' में आरम्भ से अन्त तक राजस्थानी की ही छटा मिलती है।

—दैनिक हिन्दुस्तान

आज भी समाज में अध्यापक से ही आदर्श जीवन की अपेक्षा की जाती है, अतः इन कहानियों में से अधिकांश का स्वर आदर्श और सुधारवादी रहा है तो इसे अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता।

—प्रकर, दिस., 80

जयप्रकाश भारती ने अध्यापकों की इस अनमोल भेंट को सम्पादित कर बच्चों के सामने प्रस्तुत किया है। सम्पादक का कहना है—जब-जब बच्चे इसे पढ़ेंगे मनोरंजन होने के साथ उनको कहीं कोई रोशनी की लकीर भी दिखाई देगी।

—दैनिक हिन्दुस्तान

सरकारी महकमों ने इतना निराश किया है कि जब हम राजस्थान के शिक्षा-विभाग के प्रकाशनों पर नजर डालते हैं तो एक बारगी आश्चर्य में ही डूब जाते हैं।

—राजस्थान पत्रिका दैनिक

संकलन की अधिकांशतम कविताएँ जैसा कि कहा—जीवन की विसंगतियों, दैनिक जीवन की आपा-धापी और उधेड़बुनों को व्यक्त करती हैं। इनमें ज्यादातर प्रलाप लगती हैं, कविता कम।

—इतवारी पत्रिका